

दर्शन : न्याय, वेदान्त, सांख्य और मीमांसा

खंड 1	
भारतीय दर्शन	5
खंड 2	
तर्कसंग्रह (अन्नं भट्ट)	65
खंड 3	
वेदान्तसार (सदानन्द)	151
खंड 4	
सांख्यकारिका (ईश्वरकृष्ण)	271
खंड 5	
अर्थसंग्रह (लौगाक्षिभास्कर)	399

## पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय  
कुलपति, श्री लाल बहादुर शास्त्री  
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय,  
नई दिल्ली।

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी  
भूतपूर्व कुलपति, केन्द्रीय संस्कृत  
विश्वविद्यालय,  
नई दिल्ली।

प्रो. रमाकान्त पाण्डेय  
प्रोफेसर, केन्द्रीय संस्कृत  
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र  
भूतपूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द  
संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रो. दीप्ति त्रिपाठी  
भूतपूर्व अध्यक्ष संस्कृत विभाग,  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

प्रो. सत्यकाम,  
हिन्दी संकाय, मानविकी  
विद्यापीठ  
इग्नू, नई दिल्ली।

## कार्यक्रम संयोजक

प्रो. सत्यकाम,  
प्रोफेसर, हिन्दी संकाय, मानविकी विद्यापीठ  
इग्नू, नई दिल्ली

## पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई संख्या	पाठ लेखक	इकाई संख्या
डॉ. अवधेश प्रताप सिंह सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।	1, 2, 5, 7, 8	डॉ. परमेश शर्मा सहायक प्रोफेसर, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	15
डॉ. श्रुति मिश्रा सहायक प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।	3, 6	प्रो.मार्कण्डेय नाथ तिवारी प्रोफेसर, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	16, 17, 19, 22
डॉ. पंकज व्यास एसो. प्रोफेसर, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, तिरुपति।	4	डॉ. अजय कुमार झा सहायक प्रोफेसर, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।	18, 21
डॉ. अम्बरीष मिश्र सहायक प्रोफेसर, भरत मिश्र संस्कृत महाविद्यालय, छपरा, बिहार।	9	डॉ. प्रमोद कुमार सिंह सहायक प्रोफेसर, मैत्रेयी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।	20, 23
प्रो. सच्चिदानन्द मिश्र प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।	10, 11, 12	प्रो. शिवशंकर मिश्र प्रोफेसर, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	24, 25, 26
डॉ. पूजा मनमोहन उपाध्याय सहायक प्रोफेसर, महर्षि पाणिनी संस्कृत वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन।	13, 14		

## पाठ्यक्रम संयोजक

प्रो. सत्यकाम  
प्रो. जगदीश शर्मा

## पाठ्यक्रम सम्पादक

प्रो. जगदीश शर्मा  
प्रोफेसर, अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, इग्नू

## सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज  
सहायक कुल सचिव (प्रकाशन)  
सा.नि. एवं वि. प्र. इग्नू, नई दिल्ली

श्री यशपाल  
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)  
सा.नि. एवं वि. प्र. इग्नू, नई दिल्ली

अक्टूबर, 2020

©इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2020

ISBN-

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति  
लिए बिना मिनियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

मानविकी विद्यापीठ एवं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के बारे में विश्वविद्यालय कार्यालय  
मैदान गढ़ी नई दिल्ली से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग, इग्नू द्वारा  
मुद्रित एवं प्रकाशित

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यूटर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रक :

## पाठ्यक्रम परिचय – दर्शन : न्याय, वेदान्त, सांख्य और मीमांसा

प्रिय शिक्षार्थियो, एम.ए.(संस्कृत) के विद्यार्थी के रूप में अब आप **MSK-003** 'दर्शन : न्याय, वेदान्त, सांख्य और मीमांसा' पाठ्यक्रम का अध्ययन करने जा रहे हैं। दर्शन शास्त्र का भारतीय एवं विश्व ज्ञान परंपरा में विशेष महत्व है। ज्ञान के माध्यम से आत्मोत्थान करने में भारतीय दर्शन शास्त्र की विभिन्न परंपराओं की महत्ती भूमिका है। इसी दृष्टि से इस पाठ्यक्रम में न्याय, वेदान्त, सांख्य और मीमांसा दर्शन परंपराओं पर आधारित साहित्य को एम.ए. (संस्कृत) के पाठ्यक्रम 003 की अध्ययन सामग्री में शामिल किया गया है। यह 8 क्रेडिट का पाठ्यक्रम है तथा इसमें कुल 26 इकाईयाँ हैं।

प्रथम खंड में आप 'भारतीय दर्शन' के अन्तर्गत भारतीय दर्शन का परिचय प्राप्त करेंगे। भारतीय दर्शन में आस्तिक और नास्तिक दो परंपराएँ प्रचलित हैं। अतः खंड की तीन इकाईयों में भारतीय दर्शन के सामान्य परिचय प्रदान करने के साथ-साथ आस्तिक दर्शन के अन्तर्गत न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त दर्शनों पर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। नास्तिक दर्शन में चार्वाक, जैन और बौद्ध दर्शन प्रमुख हैं, अतः इनका भी सविशेष वर्णन खंड की इकाईयों में प्रस्तुत है।

द्वितीय खंड 'तर्कसंग्रह (अन्नम्भट्ट)' में अन्नम्भट्ट प्रणीत तर्कसंग्रह आधारित सामग्री को प्रस्तुत किया गया है। इस खंड में न्याय वैशेषिक परंपरा और तर्कसंग्रह के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। तर्कसंग्रह पर आधारित पदार्थ, द्रव्य-निरूपण, गुणनिरूपण, प्रमाण निरूपण के अन्तर्गत पदार्थ, द्रव्य, गुण, प्रत्यक्ष-अनुमान उपमान, शब्दादि प्रमाणों के विवेचन का अध्ययन आप करेंगे।

चतुर्थ खंड 'सांख्यकारिका' है। इसके अन्तर्गत आप ईश्वरकृष्णप्रणीत अति महत्वपूर्ण ग्रंथ सांख्यकारिका का परिचय प्राप्त करेंगे। ग्रंथ के विवेच्य विषयों में त्रिविध दुखों, त्रिविध प्रमाणों, सत्कार्यवाद, सृष्टिक्रम, प्रत्ययसर्ग और भोग एवं अपवर्ग आदि का विशेष अध्ययन करेंगे। सामग्री को विशिष्ट शब्दावली की व्याख्या और संदर्भ ग्रंथ सूची से समृद्ध बनाया गया है।

पंचम खंड 'अर्थसंग्रह' (लौगाक्षिभास्करकृत) है। अर्थसंग्रह के वर्ण्य-विषयों को खंड की इकाईयों में शिक्षार्थियों के अध्ययन हेतु सम्मिलित किया गया है। धर्म, भावना तथा वेद की अपौरुषेयता के साथ-साथ मन्त्र, नामधेय, निषेध, अर्थवाद तथा वेद विचार आदि विभिन्न पक्षों का अध्ययन शिक्षार्थी इस खंड की इकाईयों में करेंगे।

इस पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री में भारतीय दर्शन का विस्तृत परिचय तथा विभिन्न दर्शन परंपराओं से संबद्ध ग्रंथों का मूल पाठ अर्थ, भाव, विशेष-विवेचन सहित प्रस्तुत किया गया है ताकि यह शिक्षार्थियों के लिए सुग्राह्य बन सके। दर्शनशास्त्र की विशिष्ट शब्दावली और महत्वपूर्ण सहायक ग्रंथों का संकेत भी अध्ययन में सहायक होगा, यह आशा है। संपूर्ण पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री निम्नवत् संयोजित है—

1. भारतीय दर्शन—	3 इकाईयाँ
2. तर्कसंग्रह (अन्नम्भट्ट)—	5 इकाईयाँ
3. वेदान्तसार (सदानन्द)—	7 इकाईयाँ
4. सांख्यकारिका (ईश्वरकृष्ण)—	8 इकाईयाँ
5. अर्थसंग्रह (लौगाक्षिभास्कर)—	3 इकाईयाँ
<b>कुल</b>	<b>26 इकाईयाँ</b>



खंड

# 1

भारतीय दर्शन

इकाई 1

भारतीय दर्शन का परिचय

7

इकाई 2

आस्तिक दर्शन : न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त

21

इकाई 3

नास्तिक दर्शन : चार्वाक, जैन, बौद्ध

47

---

## खंड परिचय – खंड 1 भारतीय दर्शन

---

भारतीय दर्शन पाठ्यक्रम का प्रथम खंड है। इस खंड में तीन इकाईयाँ समाहित हैं जिनमें भारतीय दर्शन जैसे गूढ़ विषय में प्रवेश हेतु उसका सामान्य परिचय तथा भारतीय दर्शन की दो आधारभूत विचारधाराओं की पृष्ठभूमि एवं चिंतनधारा का विवेचन किया गया है। परिचयात्मक इकाई के बाद आस्तिक दर्शन के अंतर्गत न्याय वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा तथा वेदान्तसार दर्शन शाखाओं पर चर्चा प्रस्तुत की गई है। नास्तिक दर्शन परंपरा में चार्वाक, जैन एवं बौद्धों के दर्शन साहित्य एवं विचारकों की चर्चा सम्मिलित है।

खंड की प्रत्येक इकाई में वर्ण्य विषय का परिचय, आधार ग्रंथों एवं चिन्तकों तथा महत्वपूर्ण ग्रंथों में से मूलपाठ को व्याख्या एवं विशेष विवेचन सहित प्रस्तुत किया गया है। विषय से संबंधित शब्दावली तथा उपयोगी पुस्तकों का संकेत भी छात्रों की सुविधा के लिए यथास्थान किया गया है। खंड की इकाईयों का विवरण इस प्रकार है :

इकाई 1 भारतीय दर्शन का परिचय

इकाई 2 आस्तिक दर्शन : न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त

इकाई 3 नास्तिक दर्शन : चार्वाक, जैन, बौद्ध

ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY

---

## इकाई 1 भारतीय दर्शन का परिचय

---

### इकाई की रूपरेखा

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 दर्शन की परिभाषा
- 1.3 दर्शन का प्रधान लक्ष्य
- 1.4 परमतत्त्व को देखने का उपाय
- 1.5 अधिकारी बनने की आवश्यकता
- 1.6 आक्षेप और उनका परिहार
- 1.7 दर्शनों का वर्गीकरण
- 1.8 दर्शनों में परस्पर सम्बन्ध
- 1.9 सारांश
- 1.10 शब्दावली
- 1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 1.12 अभ्यास प्रश्न

---

### 1.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- दर्शन की परिभाषा तथा विचारप्रक्रिया से अवगत होंगे।
- भारतीय दर्शनों के प्रधान लक्ष्य तथा उसकी प्राप्ति के उपायों का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- परमतत्त्व को देखने के उपायों से परिचित होंगे।
- भारतीय दर्शनों में अधिकारी बनने की आवश्यकता को ज्ञान जान सकेंगे।
- भारतीय दर्शन पर होने वाले आक्षेपों तथा उसके निराकरण से अवगत होंगे।
- भारतीय दर्शन में निहित जीवनमूल्यों से परिचित होंगे; तथा
- भारतीय दर्शनों की तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा तथा आचारमीमांसा का अनुशीलन करने में समर्थ हो सकेंगे।

---

### 1.1 प्रस्तावना

---

प्रिय शिक्षार्थियो जैसे कि आपने अन्यत्र पढ़ा होगा, 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' अर्थात् बिना प्रयोजन के मन्दबुद्धि भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होते, तो शास्त्रकारों की प्रवृत्ति प्रयोजन में स्वतः सिद्ध होती है। अतः भारतीय परम्परा में इस उक्ति को अत्यन्त सिद्ध्यर्थक स्वीकृत किया गया है। यही कारण है कि सभी भारतीय

दार्शनिकों ने अपने दर्शनों में पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) में मोक्ष को ही परमप्रयोजनार्थ स्वीकृति प्रदान की है, तथा अन्य सभी प्रयोजनों को गौण रूप में स्वीकृत किया है। यद्यपि भारतीय दार्शनिकों की दोनों धुरियों (आस्तिक एवं नास्तिक) ने अपने-अपने चिन्तन के अनुसार प्रयोजनों को भिन्न-भिन्न रूप में स्वीकार किया है तथापि मोक्ष को दर्शन के परम प्रयोजन के रूप में सभी में ऐकमत्य प्राप्त होता है। अतः भारतीय दर्शनों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इनका परम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है तथा इसी को भारतीय दर्शनों में मोक्ष, ब्रह्मसाक्षात्कार, निःश्रेयस्, निर्वाण, मुक्ति आदि नामों से अभिहित किया गया है।

आस्तिक दर्शनों में प्रतिपादित तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा एवं आचारमीमांसा का आधार हमारा वैदिक वाङ्मय ही है। इन्हीं का अवलम्बन कर भारतीय मनीषियों ने इनके आत्मज्ञान पक्ष एवं मानव के चरमभूत लक्ष्य मोक्ष के निरूपणार्थ वैदिक श्रुतियों के गूढार्थ को द्वैत और अद्वैतादि दर्शनों में विभाजित किया, जिनका परमलक्ष्य मानव के धर्मार्थ को सम्पादित कर उसे मोक्ष की प्राप्ति कराना है। वस्तुतः भारतीय दर्शनों में तत्त्वों के अस्तित्व एवं प्राधान्याप्राधान्य में भेद होने पर भी लक्ष्य में एकात्मकता है तथा भारतीय दर्शनों का यह भेद भी एकात्मवादी श्रुतियों एवं अनेकात्मवादी श्रुतियों के आधार पर ही है। यद्यपि नास्तिक दर्शनों ने वेदों को अंगीकृत नहीं किया है, तथापि आस्तिक दर्शनों के बाहुल्य तथा प्राचीनकाल से लेकर अद्यावधि समाज में इनकी स्वीकार्यता एवं प्रबलता के कारण ही अधिकांशतः दार्शनिक भारतीय दर्शन को वेदमूलक ही स्वीकृत करते हैं। इस पाठ्यक्रम की इस प्रथम इकाई में इसी परिप्रेक्ष्य में दर्शन की परिभाषा उसके लक्ष्य, दर्शन-भेद, परम तत्त्व तथा उसके अधिकारी एवं दर्शनों की तत्त्व, ज्ञान एवं आचार मीमांसा का परिचयात्मक अनुशीलन करेंगे।

## 1.2 दर्शन की परिभाषा

दर्शन शब्द 'दृश् दर्शने' धातु से करणार्थक 'ल्युट्' प्रत्यय करके निष्पन्न होता है, जिसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ होता है— 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाए, वही दर्शन है। यदि हम इस शब्द का यही रूढ़ अर्थ गृहीत करें तो चूँकि मानव चक्षु की सहायता से बाह्य पदार्थों को देखता है, इसलिए केवल चक्षुरिन्द्रिय ही दर्शन कहलाएगी तथा केवल उससे ग्राह्य विषय ही दार्शनिक विश्लेषण की परिधि में आयेंगे। इसीलिए दार्शनिक समप्रत्ययों में दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति 'दृशिर् प्रेक्षणे' धातु से करण अर्थ में 'ल्युट् प्रत्यय' तथा भाव अर्थ में 'घञ् प्रत्यय' करके 'दृश्यतेऽनेन इति दर्शनम्' तथा 'दृश्यते इति दर्शनम्' को स्वीकार किया जाता है। 'प्रेक्षण' का अर्थ है — विचार करना, अतः इस व्युत्पत्ति के अनुसार विचार करने के सभी साधन तथा विचार क्रिया के समस्त विषय दर्शन के क्षेत्र में समाविष्ट हो जाते हैं। इस व्युत्पत्तिपरक अर्थ को ऐसे समझा जा सकता है — मनुष्य एक कुशाग्रबुद्धि जीव है, जिसकी बुद्धि का एक अन्यतम बिन्दु जिज्ञासा है तथा यह जिज्ञासा मनुष्य में आदिकाल से ही रही है। इसी के आधार पर मनुष्य अपने दर्शन का निर्माण करता है तथा वही दर्शन विकसित होकर सिद्धान्तों एवं आविष्कारों का रूप ले लेता है।

इसी विकास के क्रम में अन्तर्भूत भारतीय दार्शनिक मनीषियों ने अपनी जिज्ञासा एवं चिन्तन के बल पर वेदों को आधारभूत करके अपने भिन्न-भिन्न दर्शनों का प्रणयन किया। इसी दार्शनिक व्युत्पत्ति को प्रायः सभी दर्शनों में स्थान प्राप्त हुआ। इसी की व्याप्ति को मानकर करणार्थक ल्युट् प्रत्यय इङ्गित करता है— मनुष्य का वस्तुओं के



साथ क्या सम्बन्ध है, उन सम्बन्धों का निर्धारण कैसे करें तथा इनको जानने के साधन क्या हैं ? इन सभी प्रश्नों का एकात्मक उत्तर दर्शन ही है। वस्तुतः भारतीय दर्शनों का अध्ययन करने पर दर्शन शब्द एक अन्य अर्थ "प्रमाण" की भाँति प्रतीत होने लगता है, क्योंकि दोनों ही शब्द करणार्थक हैं तथा साधन के रूप में अवस्थित हैं। इनका मुख्य कार्य ऐसे साधन के रूप में है जो कि अज्ञानादि की निवृत्तिपूर्वक यथार्थ-ज्ञान कराने वाला हो। अतः भारतीय दार्शनिकों ने दर्शन शब्द के देखना, जानना और प्रमा करना इत्यादि अर्थ परिष्कार रूप में स्वीकार किये हैं।

### 1.3 दर्शन का प्रधान लक्ष्य

जैसा कि दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति से ही स्पष्ट है, दर्शन का सामान्यार्थ "देखना" केवल उसका इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष मात्र न होकर सत् को सत् के रूप में जानना है, अर्थात् वस्तु के मिथ्यात्व का परिहार करते हुए उसके यथार्थ स्वरूप को जानना। इसको लौकिक उदाहरण से समझा जा सकता है, जैसे – कोई व्यक्ति यदि ओदन (भात) की इच्छा करता है तो वह उसे प्राप्त करने के लिए तण्डुलचयन, तण्डुल-प्रक्षालन एवं पाकक्रिया के अनन्तर ही प्राप्त करता है। यहां उसका परमलक्ष्य तो ओदन की प्राप्ति ही है, परन्तु अन्य क्रियायें केवल उसकी सहायक मात्र ही हैं, न कि मुख्य। इसी प्रकार भारतीय दार्शनिकों ने इस पर चिन्तन किया कि क्या सांसारिक सुख ही परमप्रयोजन हो सकते हैं? इस विषय पर प्रायः अधिकतर दार्शनिक एकमत हैं कि सांसारिक सुख केवल क्षणिक हैं, वे अधिक समय तक सुख प्रदान नहीं करते। तो वह कौन-सा ऐसा सुख है जो आत्यन्तिक है तथा आत्यन्तिक दुःख के अभाव वाला है। इस प्रश्न के उत्तर में भारतीय दर्शन मोक्ष का उल्लेख करते हैं, यद्यपि इसकी व्याख्या भारतीय दर्शनों ने अलग-अलग रूप में की है तथापि इसकी आधारशिला आत्यन्तिक सुख की प्राप्ति तथा आत्यन्तिक दुःख के अभाव वाली है।

सांख्य दर्शन में मुक्ति अर्थात् मोक्ष का स्वरूप तीनों प्रकार के दुःखों (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) के आत्यन्तिक अपघात को ही स्वीकृत किया गया है। इसका सारगर्भित विवेचन सांख्यकारिका की प्रथम कारिका में ही प्राप्त हो जाता है, जो कि इस प्रकार है –

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ ।

दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्तोऽभावात् ।।

त्रिविध दुःखों की आत्यन्तिक एवं ऐकान्तिक निवृत्तिस्वरूप 'कैवल्य' की प्राप्ति के लिए प्रकृति-पुरुष का विवेकज्ञान (विवेकख्याति/सत्त्वपुरुषान्यताख्याति) मुमुक्षु के लिए विहित किया गया है।

योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतंजलि हैं। इस दर्शन का परम लक्ष्य सूत्रकार ने कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति को माना है तथा इसकी प्राप्ति चित्तवृत्ति के निरोध से ही सम्भव है। जैसा कि उक्त है – "योगश्चित्तवृत्तिर्निरोधः" अर्थात् योग चित्त की वृत्तियों (प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति) का निरोध है तथा इनके निरोध का साधन अभ्यास और वैराग्य हैं – "अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः"। एक वाक्य में यदि कहा जाए तो योग का मुख्य उद्देश्य कैवल्य की ही प्राप्ति है तथा जो केवल चित्तवृत्तियों के निरोध से ही सम्भव है।

न्याय दर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम हैं जो न्यायसूत्रों के रचनाकार हैं। इस ग्रन्थ के प्रथम सूत्र में महर्षि गौतम ने परमलक्ष्य का निरूपण कुछ इस प्रकार से किया है –

‘प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजन-दृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभास-छलजतिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निश्रेयसाधिगमः’।

अर्थात् इन षोडश पदार्थों के तत्त्वज्ञान से ही निःश्रेयस् की प्राप्ति की जाती है।

वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद हैं। इन्होंने वैशेषिक सूत्रों की रचना की। वैशेषिकदर्शन का परम लक्ष्य ‘अपवर्ग’ है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव इन सप्त पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्य ज्ञान से अपवर्ग की सिद्धि होती है।

मीमांसा दर्शन में परम लक्ष्य को लेकर मुख्य रूप से दो परम्पराएं प्रचलित हैं – प्राचीन व नव्य। इनमें प्राचीन मीमांसक स्वर्ग की प्राप्ति को ही परम लक्ष्य के रूप में स्वीकार करते हैं तथा स्वर्ग की व्याख्या कुछ इस प्रकार से करते हैं – “दुःखविरोधि सुखविशेषश्च स्वर्गः” अर्थात् स्वर्ग वही है जहाँ दुःखों का अत्यन्ताभाव तथा सुखविशेष की प्राप्ति हो। ये स्वर्ग को साध्य व यज्ञ को उसके साधन के रूप में स्वीकार करते हैं। “स्वर्गकामो यजेत्” अर्थात् उस परमलक्ष्य स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यज्ञ करना चाहिए, यह पंक्ति इनके इस मत का समर्थन करती है। परन्तु अर्वाचीन नव्य मीमांसकों की धारा में परम लक्ष्य के स्वरूप में परिवर्तन दृष्टिगत होता है। इनके अनुसार मीमांसा का परमलक्ष्य निःश्रेयस प्राप्ति ही है।

वेदान्त दर्शन में परम लक्ष्य के रूप में मुक्ति को स्वीकार किया गया है तथा इनकी मुक्ति का स्वरूप ब्रह्मसाक्षात्कार, ब्रह्ममय या आनन्दमय हो जाना है। इसका समर्थन वेदान्तसार का यह उद्धरण प्रस्तुत करता है – “प्रयोजनं तु तदैक्यप्रमेयगताज्ञाननिवृत्तिः स्वस्वरूपानन्दावाप्तिश्च “तरति शोकमात्मवित्” इत्यादिश्रुतेः, “ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति” इत्यादिश्रुतेश्च।”

नास्तिक शिरोमणि उपाधि से प्रचलित चार्वाक दर्शन के प्रणेता बृहस्पति को माना जाता है। यह दर्शन स्वयं को प्रत्यक्षवादी या भौतिकवादी मानता है। इनके यहां परम लक्ष्य का स्वरूप अन्य सभी दर्शनों से भिन्न है। यह संसार में ही प्राप्त हो सकने वाले भौतिक सुख, समृद्धि एवं उससे प्राप्त होने वाले आनन्द को ही मोक्ष के रूप में स्वीकार करता है। इस दर्शन की यह पंक्ति इनके मत को प्रकट करने में सक्षम है –

यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पीबेत्।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

जैन दर्शन का परम लक्ष्य जीव को मोक्ष की प्राप्ति कराना है। इस दर्शन के अनुसार जीव यद्यपि स्वभावतः मुक्त तथा अनन्तचतुष्टयसम्पन्न (अनन्त ज्ञान, अनन्त श्रद्धा, अनन्त वीर्य तथा अनन्त आनन्द) है किन्तु अविद्या के कारण वह 8 प्रकार के कर्मपुद्गलों (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र एवं अन्तराय) से संयोग कर लेता है एवं बन्धन से ग्रस्त हो जाता है। बन्धन से मुक्त होने के लिए जीव को जैन तत्त्वमीमांसा में स्वीकृत सात पदार्थों (जीव, अजीव, आश्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा एवं मोक्ष) का त्रिरत्नों (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र) के आचरण से सिद्धि प्राप्त करने का विधान है। इस प्रक्रिया से जीव के समस्त कर्मों का आत्यन्तिक क्षय हो जाने पर ‘मोक्ष’ की प्राप्ति हो जाती है।

बौद्ध दर्शन में परम लक्ष्य को 'निर्वाण' कहा जाता है। बुद्ध के 'आर्यचतुष्टय' (दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध एवं दुःखनिरोधगामिनीप्रतिपद) वचनानुसार संसार दुःखमय है तथा मनुष्य के समस्त दुःखों का मूल कारण तृष्णा है। 'आर्याष्टांगिक मार्ग' (सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि) पर चलकर दुःखों का सर्वदा के लिए अभाव हो जाता है, इसे ही 'निर्वाण' कहा जाता है।

## 1.4 परमतत्त्व को देखने के उपाय

विश्व के सभी दर्शनों के समान भारतीय दर्शनों ने भी अपने वैविध्यपूर्ण परमतत्त्व (परमात्मतत्त्व या परमसत्ता) की स्थापना करने का महनीय प्रयत्न किया है। भारतीय दर्शनों का एक अन्य वैशिष्ट्य यह भी है कि भारतीय दर्शनों में न केवल श्रुत्याधारित तर्कों के आधार पर परमतत्त्व की सत्ता एवं स्वरूप का निरूपण किया गया है, अपितु परमसत्ता-विषयक जिज्ञासा को भी विशद् रूप से वर्णित किया गया है, जिसमें लेशमात्र भी लाघव दृष्टिगोचर नहीं होता है। भारतीय दर्शनों में व्याप्त परमसत्ता का स्वरूप तथा उसके दर्शन के उपाय क्रमशः इस प्रकार है —

### • सांख्य दर्शन

यद्यपि सांख्यदर्शन में प्रकृति तथा पुरुष का ही विस्तृत विवेचन तथा प्राधान्य अकाट्य तर्कों से प्रतिपादित किया गया है, तथापि त्रिगुणादि से समन्वित प्रकृतितत्त्व के अचेतन होने से तथा पुरुष के मोक्षार्थ निरूपित होने के कारण सांख्य-रीति में पुरुष का ही प्राधान्य एवं सर्वस्व स्वीकृत होता है।

सांख्य के अनुसार पुरुष को आत्मबोध तथा अपने स्वरूप का ज्ञान प्रकृति तथा उसके कार्यस्वरूप महदादि के द्वारा होता है तथा वह अपने लक्ष्यस्वरूप अपवर्ग की प्राप्ति भी बुद्धि के विकारस्वरूप ज्ञान के द्वारा ही करता है। अतः सांख्य की रीति के अनुसार प्रकृति स्वयं की तथा अपने कार्यों की अचेतनता को बोधित करवाती हुई पुरुष को उसके आत्मस्वरूप का ज्ञान कराती है। इस प्रकार सांख्य के अनुसार पुरुष के दर्शन का उपाय प्रकृति एवं उसके कार्य हैं। जैसा कि उक्त है —

रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः।

सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण ॥ (सांख्यकारिका, 63)

### • योग दर्शन

योगदर्शन ने आमुक्तकण्ठ से ईश्वर को ही परमतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। इसके अनुसार ईश्वर ही संसार का निमित्त कारण है। यहाँ प्रकृति एवं पुरुष के संयोग में ईश्वर ही हेतु है; क्योंकि प्रकृति तथा पुरुष के संयोग से ही जगत् की सृष्टि तथा वियोग से ही जगत् स्वकारणों में प्रलीन होता है। अतः प्रकृति-पुरुष के संयोग एवं वियोग का एक ही निमित्त कारण सम्भव है, जो कि सर्वशक्तिमान ईश्वर है। इस सर्वशक्तिमान ईश्वर के स्वरूप को निरूपित करते हुए महर्षि पतंजलि ने कहा है — 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः' अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक तथा कर्मजनित संस्कार रूप आशय से रहित पुरुषविशेष ही ईश्वर है।

इस ईश्वर की परमसत्ता को तथा परमलक्ष्यभूत 'कैवल्य' को असम्प्रज्ञातसमाधि के द्वारा ज्ञात किया जा सकता है जो कि अष्टाङ्ग योग के माध्यम से ही सम्भव है। ये अष्टाङ्ग-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि है।

## ● न्याय-वैशेषिक दर्शन

न्याय एवं वैशेषिक दर्शन के अध्ययन से यह स्पष्टतया प्रतीत हो जाता है कि ये दोनों दर्शन एक ही परमात्मतत्त्व ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते हैं। न्याय-वैशेषिक दर्शन में प्रायः एक ही रीति से ईश्वर के स्वरूप को निरूपित किया गया है, जिसके अनुसार ईश्वर जगत् का आदिकर्ता, पालक तथा संहारक है। इसी ईश्वर को उन्होंने परमात्मा के रूप में वर्णित किया है तथा इसे ही सर्वज्ञ पद से अभिहित किया गया है। इसी क्रम में न्याय-वैशेषिक ने ईश्वर को अनुमानवेद्य स्वीकृत किया है। न्यायकुसुमांजलिकार ने ईश्वर की सत्ता सिद्धि में 8 हेतु दिये हैं –

“कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः।

वाक्यात् संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः॥”

‘प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितंडाहेत्वाभासच्छ लजातिनिग्रहस्थानानां

तत्त्वज्ञानानिःश्रेयसाधिगमः’ (न्यायसूत्र, 1.1.1) के अनुसार प्रमाणादि षोडश पदार्थों के तत्त्वज्ञान से अपवर्ग (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। वैशेषिकदर्शन का परम लक्ष्य ‘अपवर्ग’ है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव इन सप्त पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्य ज्ञान से अपवर्ग की सिद्धि होती है।

## ● मीमांसा

मीमांसा-दर्शन में परमसत्ता का निरूपण अत्यन्त अस्फुट तथा गूढ़ है। क्योंकि मीमांसा के प्रतिष्ठापक आचार्य जैमिनी ने ‘अथातो धर्मजिज्ञासा’ इस सूत्र से धर्म को ही प्रारम्भ में मानव का लक्ष्य सिद्ध किया तथा उसके उपाय के रूप में विधिसम्मत यज्ञों का प्रतिपादन किया। इस यज्ञ-मीमांसा का एक वैशिष्ट्य यह है कि इसमें यज्ञीय देवताओं की ही सत्ता को स्वीकार किया गया। अतः मीमांसा के आदिम ग्रन्थों में लौकिक देववाद को न स्वीकृत करके केवल यज्ञीय देवताओं को ही स्वीकृत किया गया था एवं ईश्वर को स्वर्गादि फल में हेतु नहीं माना गया, परन्तु उत्तरकालीन मीमांसकों ने ईश्वर की सत्ता एवं सर्वशक्तिमत्ता को स्वीकृत किया, जिसमें ‘सेश्वरमीमांसा’ तथा ‘प्रभाकरविजय’ ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं। इनके अनुसार ईश्वर ‘श्रुत्याधारितशब्दप्रमाणवेद्य’ है।

## ● वेदान्त

वेदान्तदर्शन में प्रतिपादित ‘वेदान्तो नामोपनिषदत्प्रमाणम्’ इस वाक्य से ज्ञात होता है कि वेदान्तदर्शन उपनिषद् को ही प्रमाण स्वीकृत करता है। इन्हीं उपनिषदों में निर्गुण तथा सगुण ब्रह्म दोनों को ही परमतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु आचार्य शंकर का अद्वैतवेदान्त केवल निर्गुण परब्रह्म की ही सत्ता को स्वीकार करता है। अद्वैतवेदान्त के अनुसार जीव एवं ब्रह्म अभिन्न हैं किन्तु जब जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न समझता है तो उसका यह अज्ञान ही बन्धन का मूलकारण है। जब कोई अधिकारी जिज्ञासु सांसारिक दुःखों से पीड़ित होकर गुरु के सान्निध्य में जाता है तो आचार्य उसे ‘तत्त्वमसि’ महावाक्य का उपदेश करता है। इस महावाक्य के अखण्डार्थ का बोध होने पर मुमुक्षु को जीव-ब्रह्मैक्य का ज्ञान हो जाता है। इसके उपरान्त मुमुक्षु ‘अहं ब्रह्मास्मि’ महावाक्य का श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करते हुए ‘ब्रह्मसाक्षात्कार’ कर लेता है। यही मोक्ष की स्थिति है।

## 1.5 अधिकारी बनने की आवश्यकता

भारतीय दर्शनों में मुख्य रूप से प्रतिपादित किये गये परमलक्ष्य एवं परमसत्ता आदि ज्ञान की योग्यता क्या है तथा इसका अधिकारी कौन हो सकता है एवं उसका स्वरूप क्या है, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। भारतीय दर्शन में अधिकारी को प्रमाता इत्यादि पदों से भी अभिहित किया जाता है। भारतीय दर्शन के समालोचन से यह ज्ञात होता है कि अधिकारी की प्रथम योग्यता दर्शनविषयक जिज्ञासा है। वस्तुतः भारतीय दर्शन में निहित ज्ञानमीमांसा, तत्त्वमीमांसा तथा आचारमीमांसा प्रमाता को अधिकृत करके ही पूर्ण होती है। भारतीय दर्शन की ऐतिहासिकता से ज्ञात होता है कि इसका आविर्भाव ही विशेष-प्रयोजनार्थ हुआ है।

वस्तुतः भारतीय दर्शनों की वेदमूलकता के कारण वैदिककाल में इनके अधिकारी के लिए वैदिक वाक्यों में जिज्ञासा एवं श्रद्धान्वित होना आवश्यक धर्म था, परन्तु कालान्तर में भौतिक तत्त्वों के प्राधान्य के कारण नित्यादि लौकिक कर्मों को भी अधिकारी के लिए आवश्यक रूप में प्रतिपादित किया गया। वस्तुतः भिन्न-भिन्न दर्शनों की मीमांसा के अनुसार प्रत्येक दर्शन के अधिकारी का सूक्ष्म भेद प्राप्त होता है, परन्तु आत्मज्ञान रूप एक प्रयोजन के कारण दर्शनविषयक जिज्ञासा अधिकारी का एक सामान्य गुण है। सभी भारतीय दर्शन मानव जीवन के परम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति के लिए ज्ञानमार्ग का विधान करते हैं। इस ज्ञानराशि का ग्रहण करने के लिए साधक (मुमुक्षु) का अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल होना चाहिए क्योंकि जब तक मन विशुद्ध नहीं होता है तब तक वह बार-बार साधना पथ से भटककर विषयभोगों में जाता रहता है। भगवान् कृष्ण ने भगवद्गीता में कहा भी है –

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। (भगवद्गीता, 6/35)

साधक का मन एवं इन्द्रियाँ जब तक विषयोन्मुख रहेंगी तब तक संसरण का चक्र अनवरत चलता रहेगा। इसीलिए योगसूत्रकार महर्षि पतंजलि ने कैवल्य की लब्धि के लिए 'चित्तवृत्तिनिरोध' का मार्ग उपदिष्ट किया है। जो भी साधक अपने मन (चित्त/अंतःकरण) एवं इन्द्रियों पर संयम कर लेता है वही ज्ञानप्राप्ति का अधिकारी बन जाता है।

भारतीय दर्शनों में वेदान्तदर्शन ने अधिकारी की योग्यता का विस्तृत विवेचन किया गया है। जैसा कि वेदान्तसार में उक्त है – 'अधिकारी तु विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेनापाततोऽधिगताखिल-वेदार्थोऽस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरस्सरं नित्यनैमित्तिक-प्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्मलस्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता।' (वेदान्तसार, खण्ड 4)

अर्थात् जिसने इस जन्म में अथवा इससे पूर्व किसी जन्म में वेद तथा वेदाङ्गों का विधिपूर्वक अध्ययन करके समस्त वेदार्थ को सामान्य रूप से ज्ञात कर लिया है तथा काम्य (वांछित) एवं निषिद्ध कर्मों का परित्याग करके नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त तथा उपासना कर्मों से अपने स्वान्त को पवित्र किया है। इस प्रकार पापक्षय से परिपूत साधनचतुष्टय से समन्वित ब्रह्मविद्या के जिज्ञासु ही वेदान्त के अधिकारी हैं। इसी प्रकार पूर्वमीमांसा के अनुसार धर्म का जिज्ञासु मीमांसाशास्त्र का अधिकारी है।

वेदान्तशास्त्र में यह भी कहा गया है कि ब्रह्मनिष्ठ आचार्य को ब्रह्म का ज्ञानोपदेश ऐसे ही मुमुक्षु को प्रदान करना चाहिए जो कि अधिकारी होने की योग्यता से युक्त हो –

प्रशान्तचित्ताय जितेन्द्रियाय च प्रहीणदोषाय यथोक्तकारिणे ।

गुणान्वितायानुगताय सर्वदा प्रदेयमेतत्सततं मुमुक्षवे ।।(उपदेशसाहस्री, 324)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक दर्शन में परमलक्ष्य की प्राप्ति के अनुसार अधिकारी की योग्यता को निर्धारित किया गया है, जिसमें प्रत्येक दर्शन के प्रमुख तत्त्व के प्रति श्रद्धान्वित होना ही प्रत्येक दर्शन के अधिकारी की विशिष्ट योग्यता है।

## 1.6 आक्षेप और उनका परिहार

भारतीय दर्शन को रूढ़िवादी एवं पारम्परिक स्वीकृत करके पश्चिमी दार्शनिकों एवं चार्वाक जैसे भारतीय मनीषियों ने भी अनेक प्रकार के आक्षेपों से खण्डित किया है तथा भारतीय दर्शन की परम्परा को वृक्ष की एक ही शाखा में विराजमान अनुकरणीय पक्षियों से उपमान्वित किया है, जिसका तात्पर्य है कि बिना तर्कों एवं विचारों के पूर्व सिद्धान्तों का सहसा अनुकरण करना। अतः उनका आक्षेप है कि भारतीय दर्शन श्रुति वाक्यों को ही तर्क के रूप में स्वीकृत करते हैं तथा उन श्रुतियों के बिना लोक में प्रचलित किसी भी तर्क को स्वीकृत नहीं करते हैं। अतः लोकसिद्ध वस्तुओं को प्रमाणों के आधार पर भी न स्वीकृत करना भारतीय दर्शनों की अल्पता है, ऐसा पश्चिमी दार्शनिकों का अभिमत है।

परन्तु भारतीय दर्शनों की प्रमाणमीमांसा एवं तत्त्वसिद्धि की सरणि के अवलोकन से ज्ञात होता है कि पश्चिमी दार्शनिकों द्वारा किये गये आक्षेप सत्य के धरातल पर स्थित नहीं होते हैं। यदि एक वाक्य में कहा जाये तो भारतीय दार्शनिक एक ऐसे वस्त्रनिर्माता के समान है, जो श्रुतिरूपी तन्तुओं के संयोग से अपने सिद्धान्तरूपी पट का निर्माण करते हैं तथा उसे ही प्रमाण रूप में स्वीकृत करते हैं। क्योंकि तर्क का कोई भी अन्त नहीं हो सकता है एवं एक बड़ा तार्किक अपने से अल्पज्ञ तार्किक के सिद्धान्त का खण्डन कर सकता है। अतः केवल तर्क ही निश्चयात्मक ज्ञान का उत्पादक नहीं हो सकता है। इसी विचारसरणि से महान् तार्किक महर्षि गौतम एवं शंकरादि सहमत थे। अतः उन्होंने योगज प्रत्यक्ष द्वारा समाहित श्रुतियों को तर्कों से प्रबल प्रमाण के रूप में स्वीकृत किया।

श्रुत्यावलम्बन के अतिरिक्त एक अन्य आक्षेप भारतीय दर्शनों की अप्रगतिशील विचारधारा पर है। परन्तु यह भी युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता है। भारतीय दर्शनों की विविधता तथा इसके टीकाकारों द्वारा अपने विचारों का स्वतन्त्र प्रकटन भारतीय दर्शन की प्रगतिशीलता का परिचायक है। भारतीय दार्शनिक प्राचीनकाल से ही अद्यावधि पर्यन्त स्वतन्त्र विचारधारा के पक्षधर हैं, परन्तु वह युक्तियुक्त तथा तर्कसंगत होना आवश्यक है। जैसे – नास्तिकशिरोमणि चार्वाक द्वारा वैदिक दर्शन के विपरीत ईश्वर के अस्तित्व स्वीकार न करना तथा वैदिक सिद्धान्तों का खण्डन करना भी भारतीय दार्शनिकों की प्रगतिशीलता को द्योतित करता है क्योंकि भारतीय दार्शनिकों ने चार्वाक के दर्शन को भी स्थान प्रदान किया तथा उसके कतिपय सिद्धान्तों का महिमामण्डन भी किया गया। अतः भारतीय दर्शन सदैव से ही प्रगतिशील विचारों से समन्वित है।

भारतीय दर्शन में मानव जीवन का परम लक्ष्य 'मोक्ष' को स्वीकार किया गया है। ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति अथवा निरतिशय-आनन्दानुभूति रूप मोक्ष की

उपलब्धि विभिन्न भारतीय दर्शनों द्वारा उपदिष्ट साधनापद्धतियों का अनुपालन करने से देहनाश के उपरान्त होती है। चार्वाक दर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन इस पर आक्षेप करते हैं कि (क) भौतिकतावादी वर्तमान युग में मोक्ष अर्थशून्य एवं अप्रासंगिक है। (ख) वर्तमान सुखों का परित्याग करके भावी आनन्द की प्रतीक्षा अनुचित है। (ग) मोक्षावस्था में नित्यानन्द की अनुभूति से अब होने लगेगी जो कि मोक्ष की संकल्पना में मनोवैज्ञानिक असंगति दोष है। इन आक्षेपों के उत्तरस्वरूप सभी भारतीय दर्शन मोक्ष को जीवनव्यापी अनुभूति के रूप में प्रस्तावित करते हैं। सभी का यह मानना है कि मनुष्य का वर्तमान जीवन दुःखों से आप्लावित है। भौतिक सुखों की अभिलाषा में मनुष्य जो भी प्रयत्न करता है, वे सभी प्रयत्न अत्यन्त दुःखसाध्य हैं तथा उनसे प्राप्त सुखरूपी फल भी क्षणिक होने के कारण अन्ततः दुःख की ही अनुभूति कराता है। इसी तथ्य को निरूपित करते हुए महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में कहा है— 'परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः' (योगसूत्र, 2.15)। प्रत्येक मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अपने जीवन में केवल और केवल सुखों का आकांक्षी होता है एवं उसकी यह कामना होती है कि यह सुख उसके जीवन में नित्य—निरन्तर बना रहे तथा उसे दुःखों की अनुभूति कभी न हो। ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति अथवा निरतिशय आनन्दानुभूति की यह अभिलाषा ही उसे ऐसे लक्ष्य का अन्वेषण करने के लिए प्रेरित करती है जिसकी उपलब्धि हो जाने पर वह समस्त कष्टों से निवृत्त हो जाय। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सभी भारतीय दर्शन प्रवृत्त होते हैं तथा इसके लिए 'मोक्ष' की अवधारणा का ख्यापन करते हैं। अतः यह आक्षेप नितान्त अनुचित है कि वर्तमान में मोक्ष अर्थशून्य एवं अप्रासंगिक है। मोक्ष के भावी जीवन में उपलब्ध होने के कारण वर्तमान में सुखों का परित्याग करके प्रतीक्षादोष का आक्षेप करने वालों के प्रति भारतीय दार्शनिकों का उत्तर है कि मोक्ष एक जीवनव्यापी अनुभूति है। कोई भी साधक विभिन्न दर्शनों में निरूपित ज्ञानप्रक्रिया का अवलम्बन करके वर्तमान में भी मोक्षावस्था की अनुभूति कर सकता है। इसीलिए भारतीय दर्शन में 'जीवनमुक्ति' के सिद्धान्त का विशद विवेचन किया गया है। भारतीय दर्शन में बताई गई आचारमीमांसा का अनुसरण करके व्यक्ति सकारात्मक चिन्तन के माध्यम से न केवल अपना नैतिक उत्थान कर सकता है अपितु वह परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की उन्नति में भी सक्रिय एवं उपयोगी योगदान दे सकता है। जहाँ तक मनोवैज्ञानिक असंगति के आक्षेप का प्रश्न है तो उसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि मानवमात्र की यह स्वाभाविक अनुभूति है कि वह स्वयं को अत्यन्त प्रिय पदार्थ के अनवरत उपभोग से कभी भी उबता नहीं है अपितु वह उसे सर्वदा प्राप्त करते रहना चाहता है। चूँकि मोक्ष ऐसी ही अवस्था है जिसके लब्ध हो जाने पर अनवरत आनन्द बना रहेगा, इसलिए मोक्ष मार्ग पर चलना व्यक्ति के लिए उचित भी है एवं प्रासंगिक भी है।

## 1.7 दर्शनों का वर्गीकरण

भारतीय दर्शनों को मुख्यतः आस्तिक एवं नास्तिक के भेद से दो भागों में वर्गीकृत किया गया है। इस भेदात्मक स्वरूप का आधार वेदप्रामाण्य का स्वीकरण है। जो दर्शन वेदों में श्रद्धा रखते हैं अर्थात् वैदिक वाक्यों के प्रामाण्य को स्वीकार करते हैं, उन्हें आस्तिक दर्शन कहते हैं तथा जो वेदों की निन्दा करने वाले अर्थात् वेदों को प्रामाणिक स्वीकृत नहीं करते हैं, उन्हें नास्तिक कहा जाता है, जैसे कि कहा भी गया है — नास्तिको वेदनिन्दकः। इस वर्गीकरण के अनुसार सांख्य—योग, न्याय—वैशेषिक

एवं मीमांसा-वेदान्त ये 6 दर्शन आस्तिक दर्शन की कोटि में आते हैं तथा चार्वाक, जैन एवं बौद्ध दर्शन को नास्तिक कोटि में रखा जाता है।

भारतीय दर्शनों का एक अन्य प्रकार से भी वर्गीकरण किया जाता है – वस्तुवादी (यथार्थवादी) एवं प्रत्ययवादी (विज्ञानवादी) दर्शन। इस वर्गीकरण का आधार जगत् एवं जागतिक पदार्थों की सत्ता की स्वीकृति है। वे दर्शन जो बाह्य जगत् एवं जगत् में अनुभूयमान विविध पदार्थों को सत्य मानते हैं, वे 'वस्तुवादी दर्शन' कहलाते हैं जबकि वे दर्शन सम्प्रदाय जो जगत् की सत्ता को वास्तविक न मानकर इसे मिथ्या मानते हैं, वे 'प्रत्ययवादी दर्शन' कहलाते हैं। वस्तुवादी दर्शनों का मानना है कि बाह्य जगत् में हमारी इन्द्रियाँ अथवा हमारा अन्तःकरण वस्तुओं को गृहीत करता है तथा हम उनके साथ व्यवहार को सम्पन्न करते हैं इसलिए यह समस्त अनुभव एवं प्रतीतियाँ असत्य नहीं कही जा सकती हैं। प्रत्ययवादी दार्शनिकों के इस तर्क का कि स्वाप्निक एवं भ्रमात्मक अनुभवों के साम्य से जगत् की प्रतीति को मिथ्या सिद्ध किया जा सकता है, इसका उत्तर देते हुए वस्तुवादियों का कहना है कि यद्यपि हमें जगत् में कदाचित् ऐसा अनुभव भी होता है जिसमें एक वस्तु जो जिस स्वरूप एवं स्वभाव की नहीं है वह उस स्वरूप एवं स्वभाव की समझ ली जाती है अर्थात् हमें एक वस्तु में उससे नितान्त भिन्न दूसरी वस्तु का ज्ञान हो जाता है, जिसे भ्रम कहा जाता है; जैसे – रस्सी को देखकर सर्प की प्रतीति हो जाना, शुक्तिका में रजत का अनुभव इत्यादि। किन्तु ये प्रतीतियाँ क्षणिक हैं एवं यथार्थज्ञान के उदित होते ही ऐसा भ्रमात्मक अनुभव बाधित हो जाता है अतः इस तर्क के आधार पर बाह्य जगत् को असत्य मानना असंगत एवं अतार्किक है। प्रत्ययवादी दार्शनिक जगत् को मिथ्या सिद्ध करने के लिए स्वप्न के दृष्टान्त को प्रस्तुत करते हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार हम स्वप्न में पदार्थों को वैसा एवं उसी रूप का देखते हैं जैसाकि हमें जाग्रत अवस्था में इस जन्म अथवा पूर्व के किसी जन्म में उन पदार्थों का अनुभव हुआ था किन्तु जब हम स्वप्नावस्था से बाहर आते हैं तो हमें यह ज्ञान हो जाता है कि स्वाप्निक पदार्थ असत्य या मिथ्या हैं। इन पदार्थों की केवल प्रतीतिमात्र (प्रत्ययमात्र) होती है जिनकी कल्पना अन्तःकरण (मन या बुद्धि) द्वारा की जाती है। इसी प्रकार जाग्रतावस्था में भी पदार्थों का अस्तित्व वास्तविक नहीं होता है, वहाँ भी इनकी सत्ता बुद्धि अथवा मन के द्वारा कल्पित ही होती है, अतः जगत् वास्तविक न होकर मिथ्या है। इसी विवेचन को आधार मानकर सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, मीमांसा, चार्वाक, जैन, भक्तिवेदान्त, वैभाषिक बौद्ध 'वस्तुवादी दर्शन' की कोटि में आते हैं तथा अद्वैतवेदान्त, सौत्रान्तिक, विज्ञानवाद एवं शून्यवाद 'प्रत्ययवादी दर्शन' कहे जाते हैं।

## 1.8 दर्शनों में परस्पर सम्बन्ध

भारतीय दर्शनों का व्यापक अर्थों में अध्ययन करने पर यह प्रतीत हो जाता है कि यद्यपि सभी दर्शनों द्वारा की गई दार्शनिक मीमांसा अलग-अलग प्रतीत होती हैं तथापि इनमें एक सार्वभौमिक संबन्ध की प्रतीति होती ही है। जैसा कि भर्तृहरि ने भी कहा है—

भेदानां बहुमार्गत्वं कर्मण्येकत्र चाङ्गता।

शब्दानां यतशक्तित्वं तस्य शाखासु दृश्यते॥

इस पद्य का आशय यही है कि जैसे – प्रयागराज जाने के लिए मार्ग भले ही भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, परन्तु गन्तव्य तो एक ही है। ऐसे ही भारतीय दर्शनों में



मतवैभिन्न्य होने पर भी अन्तिम लक्ष्य मोक्ष ही है। इसी को भारतीय दर्शनों में अलग-अलग प्रकार से व्यक्त किया है।

भारतीय दर्शनों में परस्पर सम्बन्ध एवं समन्वय को द्योतित करने वाले अनेक बिन्दु हैं जिनमें से प्रथम बिन्दु है — 'व्यावहारिकता'। भारतीय दर्शन की जितनी भी शाखाएं हैं उन सबका उद्देश्य व्यावहारिक है। वे सभी मानव के वर्तमान जीवन से सम्बन्धित समस्याओं का विश्लेषण करते हैं तथा उनसे मुक्त होने का मार्ग प्रदर्शित करते हैं। यह अत्यन्त रोचक है कि प्रत्ययवादी दार्शनिक जो कि जगत् को वास्तविक सत्ता नहीं मानते हैं; उन्होंने भी व्यवहार के स्तर पर जगत् को सत् मान लिया है। यदि गम्भीरता से विचार किया जाय तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारत में दर्शन जीवन का प्रतिबिम्ब है। एक सच्चा दार्शनिक नित्य-प्रतिदिन के जीवन में अनुभूत होने वाली विविध अनुभूतियों को ही अपने दार्शनिक विश्लेषण का विषय बनाता है। यदि कोई दर्शन जीवन को उपेक्षित करता है तो भारतीय जनमानस उसे दर्शन की कोटि में भी नहीं मानता है।

द्वितीय बिन्दु है — 'लक्ष्य की एकता'। समस्त भारतीय दर्शनों का परमलक्ष्य अन्ततः एक ही है और वह है 'जागतिक दुःख की निवृत्ति'। विशुद्ध भौतिकतावादी चार्वाक से लेकर पराप्रत्ययवादी विज्ञानवाद तक सभी दार्शनिक सम्प्रदायों का प्रधान लक्ष्य है मनुष्य को अनुभूत होने वाले दुःखत्रय (आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक) से ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक निवृत्ति। यद्यपि इस दुःखनिवृत्ति का उपाय प्रत्येक दर्शन में पृथक्-पृथक् निरूपित किया गया है किन्तु सभी दार्शनिक इस बात से सहमत हैं कि उनका प्रधान लक्ष्य मानव जीवन के दुःखों की निवृत्ति ही है।

तृतीय बिन्दु है— 'अविद्या से बन्धन एवं तत्त्वज्ञान से मुक्तिलाभ'। प्रायः सभी भारतीय दर्शन यह मानते हैं कि मनुष्य के समस्त दुःखों का मूलकारण अविद्या या अज्ञान है। अविद्या को भारतीय चिन्तन परम्परा में क्लेशरूप कहा गया है जिसके कारण ही मनुष्य तत्त्व के वास्तविक स्वरूप को पहचान नहीं पाता है तथा कर्म, कर्मसंस्कार एवं कर्मफल के बन्धन में उलझकर विभिन्न योनियों में संसरण करता रहता है। बौद्ध दर्शन में प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त द्वारा एक चक्र के माध्यम से मनुष्य के इस संसरण को सुन्दर ढंग से व्याख्यायित किया गया है। द्वादशनिदानचक्र या भवचक्र के अनुसार अविद्या-संस्कार-विज्ञान-नामरूप-षडायतन-स्पर्श-वेदना-तृष्णा-उपादान-भव-जाति-जरामरण का चक्र तब तक प्रवर्तमान रहता है जब तक व्यक्ति तत्त्वबोध के द्वारा निर्वाण की प्राप्ति नहीं कर लेता है। जैन मतानुसार अविद्या के कारण जीव 8 प्रकार के कर्मपुद्गलों (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र एवं अन्तराय) से संयोग कर लेता है एवं बन्धन से ग्रस्त हो जाता है। बन्धन से मुक्त होने के लिए जीव को जैन तत्त्वमीमांसा में स्वीकृत सात पदार्थों (जीव, अजीव, आश्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा एवं मोक्ष) का त्रिरत्नों (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र) के आचरण से सिद्धि प्राप्त करने का विधान है।

न्याय-वैशेषिक दर्शन के अनुसार अज्ञान के कारण आत्मा कर्म में प्रवृत्त होता है जिससे धर्माधर्मरूप अदृष्टसंस्कार आत्मा में संचित होते रहते हैं जिनके फलोपभोग हेतु आत्मा का संसरण होता रहता है। इस प्रकार अज्ञान ही बन्धन का मूल है। इस बन्धन से निवृत्ति के लिए न्यायदर्शन में प्रमाणादि षोडश पदार्थों के तत्त्वज्ञान का तथा वैशेषिक दर्शन में द्रव्यादि सात पदार्थों का साधर्म्य-वैधर्म्य ज्ञान उपदिष्ट किया गया है। सांख्य-योग दर्शन के अनुसार पुरुष विशुद्ध चैतन्यरूप, असंग, उदासीन एवं

नित्यमुक्त है किन्तु बुद्धि में प्रकाशित अपने प्रतिबिम्ब (चित्तिच्छायापत्ति) के कारण वह प्रकृतिकृत धर्मों को अज्ञानवशात् अपना मान लेता है तथा स्वयं को बद्ध समझने लगता है। इस बन्धन से निवृत्ति हेतु सांख्य-योग में प्रकृति-पुरुष के विवेकज्ञान का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है। पूर्वमीमांसा दर्शन में भी अज्ञान के कारण ही आत्मा विषय के सम्पर्क में आकर सुख-दुःख की अनुभूति करता है एवं बन्धन में पड़ जाता है। वेदविहित यागादि कर्मों के आचरणपूर्वक आत्मतत्त्व का ज्ञान करने से (कर्मज्ञानसमुच्चय) मोक्ष की प्राप्ति होती है। अद्वैतवेदान्त के अनुसार जीव एवं ब्रह्म अभिन्न हैं किन्तु जब जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न समझता है तो उसका यह अज्ञान ही बन्धन का मूलकारण है। जब कोई अधिकारी जिज्ञासु सांसारिकदुःखों से पीड़ित होकर गुरु के सान्निध्य में जाता है तो आचार्य उसे 'तत्त्वमसि' महावाक्य का उपदेश करता है। इस महावाक्य के अखण्डार्थ का बोध होने पर मुमुक्षु को जीव-ब्रह्मैक्य का ज्ञान हो जाता है। इसके उपरान्त मुमुक्षु 'अहं ब्रह्मास्मि' महावाक्य का श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करते हुए 'ब्रह्मसाक्षात्कार' कर लेता है। यही 'ब्रह्मसाक्षात्कार' मोक्ष की स्थिति है।

दर्शनों में परस्पर समन्वय का चतुर्थ बिन्दु है — आचारमीमांसा का प्रतिपादन। समस्त दर्शनों में दार्शनिक तत्वों के विश्लेषण के लिए तीन प्रविधियों का प्रयोग पाया जाता है — तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा एवं आचारमीमांसा। भारतीय दर्शन की चिन्तनधारा के गहन अनुशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक दर्शन में तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा के साथ आचारमीमांसा को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वस्तुतः दर्शन का प्रयोजन ही मानव का नैतिक उत्थान है, जिसके लिए कर्मसिद्धान्त एवं अन्य साधनापद्धतियों का सूक्ष्म विश्लेषण हमें प्रत्येक भारतीय दर्शन में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त भारतीय दर्शनों में एक सैद्धान्तिक संबंध भी दृष्टिगोचर होता है।

### न्याय एवं वैशेषिक

जिस प्रकार गौतम द्वारा प्रचलित न्यायदर्शन तथा कणाद द्वारा स्थापित वैशेषिकदर्शन अपनी तत्त्वमीमांसा एवं प्रमाणमीमांसा के कारण वैचित्र्यपूर्ण प्रतीत होता है परन्तु ईश्वरकर्तृक परमाणु संयोग सिद्धान्त तथा दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति रूपी मोक्ष मार्ग जैसे प्रतिष्ठित सिद्धान्तों में साम्यता प्रस्तुत होना एवं समान रीति का अनुकरण करना न्याय एवं वैशेषिक को एक ही धारा में समाहित करता है।

### सांख्य एवं योग

इन दोनों दर्शनों में एक मूलभूत समानता दृष्टिगोचर होती है कि सांख्यसिद्धान्त की तत्त्वमीमांसा के अन्तर्गत 25 तत्वों का विवेचन किया गया है तथा योग दर्शन की तत्त्वमीमांसा में उन्ही 25 तत्वों को स्वीकार करके एक ईश्वर को ही पृथक् रूप में स्वीकृत कर 26वाँ तत्व स्वीकार किया है अन्य सभी 25 तत्व दोनों में समान हैं। इसके अनन्तर एक सैद्धान्तिक समानता भी है — जहाँ सांख्य ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं करता है परन्तु सांख्य में प्रकृति के चाञ्चल्य स्वभाव को वर्णित करना एवं सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों का मानव के स्वभाव में भेद कारण सिद्ध करना योग को भी स्वीकार है। यही सरणि सांख्य एवं योग की एकरूपात्मकता को सिद्ध करती है।

### मीमांसा एवं वेदान्त

वेदों की कर्म मीमांसा को प्रतिपादित करने वाली पूर्वमीमांसा वेदों की ब्रह्म मीमांसा का एक विशिष्ट अंग है, क्योंकि धर्म मीमांसा से शुद्ध चित्त ही ब्रह्ममीमांसा में एकाकारित

होने की योग्यता रखता है। अतः पूर्व मीमांसा एवं उत्तर मीमांसा दोनों ही मीमांसा की धारा एक ही सिद्धान्त की अवच्छिन्न दो धाराएं हैं।

इस प्रकार से ज्ञात होता है कि प्रायः सभी भारतीय दर्शनों में तत्त्वमीमांसा एवं प्रमाणमीमांसा का एक सूक्ष्म भेद तो प्राप्त होता है परन्तु यह भेद वास्तविक न होकर प्रातिभासिक ही है, क्योंकि सभी दर्शनों का परम लक्ष्य मानव का कल्याण मात्र है। मानव सभ्यता के आद्य वाग्मय ऋग्वेद की सूक्ति 'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति' भारतीय दर्शनों के परस्पर सम्बन्ध एवं समन्वय पर पूर्णतः सार्थक होती है। इसी समन्वय को पुष्पदन्त के निम्नलिखित श्लोक से भी पुष्ट किया जा सकता है जिसमें यह कहा गया है कि जिस प्रकार समस्त नदियाँ अन्त में समुद्र में ही स्थान प्राप्त करती हैं उसी प्रकार प्राणियों के भेदानुसार विभिन्न दार्शनिक सरल एवं कठिन के भेद से अपने विचारों का उद्भावन करते हैं किन्तु सभी का एकमात्र उद्देश्य मानवकल्याण ही है —

रुचीनां वैचित्र्यात् ऋजुकुटिलनानापथजुषां।

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।(शिवमहिम्नस्तोत्र, 7)

## 1.9 सारांश

दर्शनशास्त्र की सामान्य व्युत्पत्ति से ज्ञात होता है कि भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में दर्शन शब्द वस्तु तथा अवस्तु के मध्य विद्यमान महान् भेद को प्रदर्शित कर मानव को वस्तु के वास्तविक स्वरूप से परिचित कराता है तथा वस्तु के सत्य ज्ञान से मानव के चरमभूत लक्ष्य मोक्ष की ओर अग्रसारित करता है। अतः भारतीय शास्त्रों में दर्शन को सम्यक् ज्ञान की दृष्टि के रूप में परिभाषित कर प्रमाणशास्त्र के रूप में अभिहित किया गया है। वस्तुतः भारतीय दर्शनशास्त्र वेदों में निहित श्रुतियों का ही उद्भावक है, जो कि अपने प्रबल प्रमाणों एवं तर्कों के आधार पर श्रुतियों के गूढार्थ को सोदाहरण प्रस्तुत कर मानव की भौतिकवादिता से निवृत्ति कर आध्यात्मिकता में प्रवृत्ति कराता है। अतः भारतीय दर्शन में दर्शन के प्रति जिज्ञासा एवं श्रद्धा को अध्येता के लिए अत्यन्त आवश्यक उद्घोषित किया गया है, जिसे प्रत्येक दर्शन ने सम्बन्ध-चतुष्टय के अन्तर्गत प्राथम्येन अधिकारी के निरूपण में विस्तृत रूप में विवेचित किया है। यह अधिकारी निरूपण भारतीय दर्शन को पाश्चात्य दर्शन से भिन्न एवं श्रेष्ठ बनाता है, क्योंकि पाश्चात्य दर्शन के अध्ययनार्थ अधिकारी को किन्हीं भी कर्मों का निर्देश नहीं किया गया है, जिससे अविकसित बुद्धि का मानव भी दर्शनशास्त्र के रहस्यमय सिद्धान्तों को अल्पज्ञतावशात् त्रुटिपूर्ण तर्कों से प्रतिपादित कर सकता है। अतः श्रुतियों के उद्गार को न समझने वाले अनैतिक कर्मों में प्रवृत्त मानव से भारतीय दर्शन की विचारधारा दूषित ही होगी। एतदर्थ महर्षियों ने दर्शनशास्त्र के अधिकारी को कतिपय शास्त्रों के अध्ययन एवं सुचरित के पालन का निर्देश दिया है जो कि दर्शन के परमलक्ष्य मोक्ष के लिए अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि मोक्ष की इच्छा रखने वाले को दर्शनशास्त्र के प्रति श्रद्धान्वित होना आवश्यक है। वस्तुतः मानव के मोक्षार्थ दर्शनों में व्याप्त तत्त्वमीमांसा एवं प्रमाणमीमांसा के आधार पर ही भारतीय दर्शनों में विभाजन भी प्राप्त होता है, क्योंकि जिस प्रकार अलंकारशास्त्र अलंकारवादी, ध्वनिवादी तथा रसवादी आचार्यों ने अलंकार, रस तथा ध्वनि की सत्ता तो सामान्यतः स्वीकार की है, परन्तु तत्त्वों का प्राधान्य अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही किया है। उसी प्रकार दर्शनशास्त्र में भी ईश्वर, प्रकृति, आत्मा तथा इन्द्रियों का वर्णन तो सामान्यतः प्राप्त होता है, परन्तु मोक्षार्थ प्रवृत्ति

तथा सहायता के अनुसार तत्त्वों का प्राधान्य एवं संख्या में भेद प्राप्त होता है। वस्तुतः यह भेद केवल प्रतीति के कारण ही है, अन्यथा दर्शनों के लक्ष्य में प्रायः साम्य ही प्रतीत होता है।

### 1.10 शब्दावली

पुरुषार्थचतुष्टय, आस्तिक, नास्तिक, प्रमाण, प्रमेय, मोक्ष, कैवल्य, निर्वाण, मुक्ति, निःश्रेयस, मीमांसा, श्रुति, मिथ्या, अधिकारी, स्वरूप लक्षण, तटस्थ लक्षण, अनुबन्धचतुष्टय, सिद्धान्त, उद्देश, लक्षण, परीक्षा (इन शब्दों का विवेचन पाठचर्चा में दिया गया है)।

### 1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- भारतीय दर्शन, एस. राधाकृष्णन (अनु.) नन्दकिशोर गोभिल, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 2010
- भारतीय दर्शन: आलोचन एवं अनुशीलन, चन्द्रधर शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2013
- भारतीय दर्शन का इतिहास, एस.एन.दासगुप्ता, (अनु.) कलानाथ शास्त्री एवं सुधीर कुमार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2003 (तृतीय संस्करण)
- संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास (दर्शन खण्ड), (स.) बलदेव उपाध्याय, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1993
- भारतीय दर्शन बृहत्कोष, बच्चूलाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2004
- भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा ओरिएण्टलिया, वाराणसी, 1976
- भारतीय दर्शन, दत्ता एवं चट्टोपाध्याय, पुस्तक भण्डार, पटना, 1969

### 1.12 अभ्यास प्रश्न

1. दर्शन शब्द का क्या अर्थ है ?
2. दर्शन के वर्गीकरण का आधार क्या है ?
3. भारतीय दर्शनों का परमलक्ष्य क्या है ?
4. न्याय दर्शन में ईश्वर की सिद्धि का विवेचन कीजिए ?
5. नास्तिक दर्शनों पर एक निबन्ध लिखिए ?
6. सांख्य दर्शन की तत्त्वमीमांसा का वर्णन कीजिए ?
7. भारतीय दर्शनों में परस्पर सम्बन्ध का विवेचन कीजिए ?
8. आस्तिक दर्शनों का विस्तृत परिचय दीजिए ?
9. वेदान्तसार के अनुसार अधिकारी का क्या लक्षण है ?
10. भारतीय दर्शनों पर आरोपित आक्षेपों एवं उसके निराकरण का विस्तृत विवेचन कीजिए?

---

## इकाई 2 आस्तिक दर्शन : न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसा-वेदान्त

---

### इकाई की रूपरेखा

- 2.0 उद्देश्य
- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 न्याय-वैशेषिक दर्शन
  - 2.2.1 न्याय दर्शन का परिचय
  - 2.2.2 न्याय दर्शन का साहित्य
  - 2.2.3 न्याय दर्शन के तत्त्वों का विचार
  - 2.2.4 ईश्वर या परमात्मा
  - 2.2.5 वैशेषिक दर्शन का परिचय
  - 2.2.6 वैशेषिक दर्शन का साहित्य
  - 2.2.7 वैशेषिक दर्शन के तत्त्वों का विचार
- 2.3 सांख्य-योग दर्शन
  - 2.3.1 सांख्य दर्शन का परिचय
  - 2.3.2 सांख्य दर्शन का साहित्य
  - 2.3.3 सांख्य-योग दर्शन के तत्त्वों का विचार
  - 2.3.4 योग दर्शन का परिचय
  - 2.3.5 योग दर्शन का साहित्य
  - 2.3.6 योग दर्शन के प्रमुख सिद्धांत
- 2.4 मीमांसा-वेदान्त दर्शन
  - 2.4.1 मीमांसा दर्शन का परिचय
  - 2.4.2 मीमांसा दर्शन का साहित्य
  - 2.4.3 मीमांसा के तत्त्वों का विचार
  - 2.4.4 वेदांत दर्शन का परिचय
  - 2.4.5 वेदांत दर्शन का साहित्य
  - 2.4.6 अद्वैत वेदांत के तत्त्वों का विचार
- 2.5 सारांश
- 2.6 शब्दावली
- 2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 2.8 अभ्यास प्रश्न

---

### 2.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- आस्तिक दर्शनों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

- आस्तिक दर्शनों की आचार्य-परम्परा से परिचित होंगे।
- आस्तिक दर्शनों के साहित्य का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- आस्तिक दर्शनों की चिन्तनप्रक्रिया से अवगत होंगे।
- भारतीय दर्शन में निहित जीवनमूल्यों से परिचित होंगे; तथा
- आस्तिक दर्शनों की तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा तथा आचारमीमांसा से अवगत होंगे।

---

## 2.1 प्रस्तावना

---

प्रथम इकाई में अपने भारतीय दर्शनों का सामान्य परिचय प्राप्त किया। अब हम आस्तिक दर्शनों की चर्चा इस इकाई में करेंगे ताकि आस्तिक एवं नास्तिक दर्शन में अंतर को समझा जा सकें। मनुष्य स्वभावतः जिज्ञासु प्राणी है। यह स्वाभाविक जिज्ञासा ही मनुष्य को विविध विषयों के ज्ञान हेतु प्रेरित करती है तथा उसके समक्ष ज्ञान के विविध स्रोतों का उद्घाटन करती है। मानवीय जिज्ञासा का तार्किक समाधान एवं मानव-जीवन के परम-लक्ष्यभूत सुख एवं शान्ति का मार्गोपदेश दर्शनशास्त्र का मुख्य प्रयोजन है। इसी के द्वारा मनुष्य अपने चिन्तन को सुसम्बद्ध तथा संगत बनाने की ओर प्रयत्नशील रहता है। मूल रूप से दर्शन शब्द 'दृश दर्शन' धातु से करणार्थक 'ल्युट्' प्रत्यय करके निष्पन्न होता है, जिसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ होता है— 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात् जिसके द्वारा देखा या जाना जाए, वही दर्शन है। यहाँ देखने का अर्थ विचार करने से है। दार्शनिक चिन्तन क्रिया मननात्मक है तथा मनुष्य की अनुभूतियों से सम्बद्ध है। इस अनुभूति का सम्बन्ध तत्त्वजिज्ञासा से है, जिसके पश्चात् मनुष्य यथार्थ के विभिन्न अर्थवान् तथ्यों को चेतना में संचित एवं व्यवस्थित करने का प्रयत्न करता है। इस प्रक्रिया में जिज्ञासु विभिन्न नियमों, सिद्धान्तों तथा मान्यताओं के विषय में युक्तियों एवं तर्कों से विचार करता है। वेदप्रामाण्य को आधार बनाकर भारतीय दर्शन का द्विविध विभाग किया जाता है— आस्तिक दर्शन तथा नास्तिक दर्शन। वेदप्रामाण्य को स्वीकार करने वाले आस्तिक कहलाते हैं जबकि वेदप्रामाण्य को न मानने वाले दर्शन नास्तिक कहे जाते हैं। इस वर्गीकरण के अनुसार सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक एवं मीमांसा-वेदान्त ये 6 दर्शन आस्तिक दर्शन की कोटि में आते हैं तथा चार्वाक, जैन एवं बौद्ध दर्शन को नास्तिक कोटि में रखा जाता है।

---

## 2.2 न्याय-वैशेषिक दर्शन

---

### 2.2.1 न्याय दर्शन का परिचय

'नीयते अनेन इति न्यायः' अर्थात् वह प्रक्रिया जिसके द्वारा परमतत्त्व की ओर ले जाया जाए वह 'न्याय' है। न्यायभाष्यकार वात्स्यायन के अनुसार 'प्रमाणैः अर्थपरीक्षणं न्यायः' (न्यायभाष्य, 1.1.1) अर्थात् प्रमाणों की सहायता से वस्तु-तत्त्व का परीक्षण करने की प्रणाली ही न्याय कहलाती है। न्याय की इस विचार-प्रक्रिया का मूल कौटिल्य के अर्थशास्त्र, चरकसंहिता तथा सुश्रुतसंहिता में उपलब्ध होता है जहाँ इसे 'आन्वीक्षिकी' के रूप में विवेचित किया गया है। अर्थशास्त्र में आन्वीक्षिकी विद्या को सभी विद्याओं का प्रकाशक, समस्त कर्मों का साधक तथा समग्र धर्मों का आश्रय कहा गया है —

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।

आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता ।। (अर्थशास्त्र, 1.1.1)

आस्तिक दर्शन :  
न्याय-वैशेषिक,  
सांख्य-योग,  
मीमांसा-वेदान्त

उचित निष्कर्ष पर पहुँचना तर्क के द्वारा सम्भव है, मुख्यतः यह दर्शन तर्क विद्या का प्रतिपादन करता है, इसलिए यह तर्कशास्त्र के नाम से भी जाना जाता है। इस दर्शन को प्रमाणशास्त्र, हेतुविद्या, आन्वीक्षिकी विद्या के नाम से भी जाना जाता है। न्याय दर्शन को उसके प्रमाण शास्त्र के कारण अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। अन्य भारतीय दर्शन परम्पराओं को 'वादविधि की प्रक्रिया' का ख्यापन न्यायशास्त्र का महत्वपूर्ण अवदान है।

न्याय दर्शन का इतिहास लगभग 2000 वर्षों में समाविष्ट है। इस विशाल दर्शन को विद्वानों ने तीन भागों में विभक्त किया है— प्राचीन न्याय, मध्य न्याय तथा नव्य-न्याय। दूसरी शताब्दी ई.पू. से छठी शताब्दी ई. का समय प्राचीनन्याय का है। मध्यन्याय का समय 6-12वीं शताब्दी तक है। बारहवीं शताब्दी एवं उसके बाद का दर्शन नव्य-न्याय में रखा जाता है। बारहवीं शती के गंगेश उपाध्याय ने नव्य-न्याय की आधारशिला रखी थी।

अन्य दर्शनों की भाँति न्याय दर्शन का भी मुख्य उद्देश्य दुःखों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना ही है। इस दर्शन के अनुसार मुक्ति तत्त्वज्ञान से अर्थात् द्वादश प्रमेयों के ज्ञान से प्राप्त होती है। तत्त्वज्ञान से मिथ्याज्ञान नष्ट होता है, जिससे दोष अर्थात् राग-द्वेष नष्ट होते हैं तथा मुक्ति मिलती है।

## 2.2.2 न्याय दर्शन का साहित्य

क) प्राचीन न्याय (प्रमेय प्रधान) के मुख्य प्रवर्तक:

- 1) **गौतम** : तर्क विद्या प्राचीन काल से ही भारत में विद्यमान रही है। उपनिषदों, रामायण, महाभारत आदि में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु न्याय दर्शन को व्यवस्थित रूप में, एक दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय महर्षि गौतम को जाता है जिनका 'न्यायसूत्र' इस दर्शन का मूल ग्रन्थ माना जाता है। इसमें 5 अध्याय, 10 आह्निक, 84 प्रकरण तथा 528 सूत्र हैं।
- 2) **वात्स्यायन** : न्यायसूत्र पर सर्वप्रथम भाष्य वात्स्यायन ने लगभग चतुर्थ शताब्दी ई. में लिखा जो 'वात्स्यायन भाष्य' या 'न्यायभाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है।

ख) मध्य न्याय (प्रमेय प्रधान) के मुख्य प्रवर्तक:

- 3) **उद्योतकार** : वात्स्यायन भाष्य पर 'न्यायवार्तिक' नाम की टीका लिखी, इनका समय लगभग 650 ई. कश्मीर में माना जाता है।
- 4) **वाचस्पतिमिश्र** : इनका समय 841 ई में माना जाता है। ये मिथिला के निवासी थे तथा इन्हें षड्दर्शनीवल्लभ की उपाधि से जाना जाता है। इन्होंने न्यायवार्तिक पर तात्पर्यटीका लिखी जो न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका के नाम से प्रसिद्ध है।
- 5) **जयन्तभट्ट** : 9वीं शताब्दी में जयन्तभट्ट ने न्यायशास्त्र पर एक विशाल ग्रन्थ लिखा जो न्यायमञ्जरी के नाम से प्रसिद्ध है, इसमें आह्निकों की संख्या 84 है।

- 6) **उदयन** : इनका समय 984 ई0 माना जाता है। इन्होंने तात्पर्यटीका पर एक उपटीका लिखी, जो 'न्यायवार्तिकतात्पर्यपरिशुद्धि' नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त 'न्यायकुसुमांजलि' एवं 'आत्मतत्त्वविवेक' उनके दो अन्य प्रसिद्ध न्यायग्रन्थ हैं।

**ग) नव्य-न्याय (प्रमाण प्रधान) के मुख्य प्रवर्तक:**

- 7) **गंगेश उपाध्याय** : नव्यन्याय के प्रवर्तक के रूप में विख्यात गंगेश उपाध्याय ने 'तत्त्वचिन्तामणि' नाम से ग्रन्थ लिखा, जो 4 खण्डों में विभाजित है, जिसमें इन्होंने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द की विशद व्याख्या की है।

'तत्त्वचिन्तामणि' की व्याख्या परम्परा में वर्धमान ने 'प्रकाश', पक्षधर मिश्र ने 'आलोक', शंकरमिश्र ने 'मयूख', रघुनाथ शिरोमणि ने 'दीधिति', मथुरानाथतर्कवागीश ने 'रहस्य', जगदीश तर्कालंकार ने 'दीधितिप्रकाश (जागदीशी)', हरिराम तर्कवागीश ने 'तत्त्वचिन्तामणिविचार' तथा गदाधर भट्टाचार्य ने 'दीधितिप्रकाशिका' नाम से विस्तृत एवं प्रौढ़ टीकाग्रन्थों की रचना की है।

**घ) प्रकरण ग्रन्थ**

- 8) **भासर्वज्ञ** : 10वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में आचार्य भासर्वज्ञ ने 'न्यायसार' नामक प्रमाणाधारित प्रकरण ग्रन्थ की रचना की है जो कि अपनी मौलिक एवं नवीन उद्भावनाओं के लिए प्रसिद्ध है।
- 9) **वरदराज** : इनके ग्रन्थ का नाम 'तार्किकरक्षा' है, तथा इनका समय 1150 ई. का है। यह वैशेषिकपदार्थसमावेष्टा न्याय का प्रकरण ग्रन्थ है।
- 10) **केशव मिश्र** : मिथिला के इस प्रसिद्ध नैयायिक ने 13वीं शताब्दी में 'तर्कभाषा' की रचना की है जिसे न्यायदर्शन में प्रवेश का द्वार माना जाता है।

**2.2.3 न्याय दर्शन के तत्त्वों का विचार**

**क) तत्त्वविचार :**

'प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्क-  
निर्णयवादजल्पवितंडाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानानिःश्रेयसाधिगमः'  
(न्यायसूत्र, 1.1.1) के अनुसार प्रमाणादि षोडश पदार्थों के तत्त्वज्ञान से अपवर्ग (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

**ख) प्रमाण विचार**

न्याय दर्शन में 16 पदार्थों के तत्त्वज्ञान द्वारा मोक्ष की प्राप्ति मानी जाती है। प्रायः सभी भारतीय दर्शन तत्त्व विचार करने के पूर्व तत्त्व को जानने के साधन पर विचार करते हैं। ये साधन ही प्रमाण कहे जाते हैं। प्रमा (यथार्थ ज्ञान) की प्राप्ति के साधन को प्रमाण कहते हैं — 'प्रमीयते अनेन इति प्रमाणम्, तथा 'प्रमाकरणं प्रमाणम्'। प्रमाण के चार प्रकार हैं —



## 1) प्रत्यक्ष प्रमाण

महर्षि गौतम ने न्यायसूत्र में कहा है –

‘इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानम्।

अव्यपदेशमव्यभिचारिव्यवसायात्मक प्रत्यक्षम्॥ (न्यायसूत्र)

इसका अभिप्राय इन्द्रिय और अर्थ (वस्तु) के सन्निकर्ष (समीपता) से उत्पन्न ऐसा ज्ञान, जो भाषा पर आधारित न हो, जो भ्रामक न हो तथा जो अनिश्चित न हो, वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। प्रत्यक्ष के दो भेद हैं – लौकिक प्रत्यक्ष तथा अलौकिक प्रत्यक्ष।

## 2) अनुमान प्रमाण

अनुमान दो शब्दों से बना है – अनु तथा मान, अनु का अर्थ पश्चात् तथा मान का अर्थ है ज्ञान, इसका तात्पर्य हुआ-पूर्वज्ञान के पश्चात् होने वाला ज्ञान ‘अनुमान’ है। न्यायदर्शन में सामान्यतः अनुमिति के करण को अनुमान प्रमाण कहा जाता है। अनुमान प्रमाण के दो भेद किये गये हैं – स्वार्थानुमान एवं परार्थानुमान। स्वार्थानुमान का प्रयोग व्यक्ति स्वयं के लिए करता है। जब किसी अन्य व्यक्ति को समझाने के लिए अनुमान प्रमाण का प्रयोग किया जाता है, तब उसे परार्थानुमान कहते हैं। यथा- पर्वत में अग्नि है (प्रतिज्ञा), क्योंकि वहाँ धुआँ है (हेतु), जहाँ-जहाँ धुआँ है, वहाँ-वहाँ अग्नि है, जैसे-रसोईघर में (उदाहरण), पर्वत में धुआँ है (उपनय), इसलिए पर्वत में अग्नि है (निगमन)। इस प्रकार से पाँच वाक्यों द्वारा अनुमान की प्रक्रिया पूर्ण होती है।

## 3) उपमान प्रमाण

सादृश्यता के आधार पर प्राप्त ज्ञान ही उपमान कहलाता है। न्याय सूत्र के अनुसार-‘प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम्’ अर्थात् प्रसिद्ध पदार्थों के समान धर्म से साध्य के साधन को उपमान कहा जाता है।

## 4) शब्द प्रमाण

गौतम के अनुसार ‘आप्तोपदेशः शब्दः’ कहा गया है अर्थात् आप्त का उपदेश (कथन) ही शब्द प्रमाण है। इनके अनुसार शब्द तभी प्रमाण बन्ते हैं जब वे यथार्थ, वास्तविक एवं विश्वास के योग्य हों। ऐसे वचनों को व्यक्त करने वाला आप्त कहा गया है।

ग) प्रमेय विचार : प्रमाण के द्वारा हम जिन पदार्थों के ज्ञान की प्राप्ति करते हैं, उन्हें प्रमेय कहा जाता है। न्याय सूत्र में प्रमेय 12 बताये गये हैं—

आत्मा-शरीर-इन्द्रिय-अर्थ-बुद्धि-मन-प्रवृत्ति-दोष-प्रेत्यभाव-फल-दुःख-अपवर्गास्तु प्रमेयम्’ (न्यायसूत्र, 1.1.9)। इनमें आत्मा प्रथम है। तर्कभाषा में आत्मा का लक्षण “आत्मत्वसामान्यवानात्मा” दिया गया है, जिसका अर्थ है – आत्मत्व नामक सामान्य (जाति) जिस पर रहता है उसे आत्मा कहा गया है। इसके अतिरिक्त आत्मा को शरीर से भिन्न, अनेक एवं विभु कहा गया है। आत्मा के भोग का आश्रय ‘शरीर’ कहलाता है। शरीरसंयुक्त

अतीन्द्रिय ज्ञानकरण को 'इन्द्रिय' कहते हैं। 'अर्थ' पदार्थ का बोधक है जिनकी संख्या 6 है — द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। 'अर्थप्रकाशो बुद्धिः' अर्थविषयक प्रकाश को 'बुद्धि' कहते हैं। सुख-दुःखादि की उपलब्धि का साधनभूत अन्तरिन्द्रिय 'मन' कहलाता है। शास्त्रविहित एवं शास्त्रनिषिद्ध कर्मों के आचरण से उत्पन्न होने वाले अदृष्ट (धर्म-अधर्म) को 'प्रवृत्ति' कहते हैं। राग, द्वेष एवं मोह संयुक्त रूप से 'दोष' कहलाते हैं। पुनरुत्पत्ति (मरण के पश्चात् पुनर्जन्म का होना) को 'प्रेत्यभाव' कहते हैं। सुख-दुःख के अनुभवरूप भोग को 'फल' कहा जाता है। पीड़ा (जो सभी को प्रतिकूलवेदनीय हो) को 'दुःख' कहते हैं। 21 प्रकार के दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति 'अपवर्ग' कहलाती है।

**घ) अन्य पदार्थ विचार :** एक धर्मी में परस्पर विरुद्ध अनेक धर्मों का बोध 'संशय' कहलाता है। जिस अर्थ को अधिकृत करके मनुष्य किसी कर्म में प्रवृत्त होता है उसे 'प्रयोजन' कहते हैं। जिस विषय में वादी-प्रतिवादी दोनों एकमत हों, वह 'दृष्टान्त' कहलाता है। किसी दर्शन द्वारा प्रामाणिक रूप से स्वीकृत अर्थ को 'सिद्धान्त' कहते हैं। अनुमान वाक्य के अंश (प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय एवं निगमन) 'अवयव' कहलाते हैं। व्याप्य के आरोप से व्यापक का आरोप 'तर्क' कहलाता है। निश्चयात्मक ज्ञान को 'निर्णय' कहते हैं। तत्त्वज्ञान की जिज्ञासा से होने वाली कथा 'वाद' कहलाती है। विजय की इच्छा से की जाने वाली कथा 'जल्प' होती है। जल्प कथा में जब कोई पक्ष अपने अभिमत की स्थापना न करके केवल प्रतिपक्ष का खण्डन ही करता है तो वह 'वितण्डा' कहलाती है। असद् हेतु को 'हेत्वाभास' कहते हैं। वक्ता द्वारा किसी भिन्न अभिप्राय से कहे गए वाक्य को सुनकर श्रोता द्वारा उसका भिन्न अर्थ मानकर दोष प्रदर्शन को 'छल' कहते हैं। असंगत उत्तर को 'जाति' कहते हैं। पराजय के निमित्त को 'निग्रहस्थान' कहते हैं।

**ग) मोक्ष :** न्याय दर्शन में मोक्ष को अपवर्ग तथा निःश्रेयस भी कहा गया है। प्रमाण, प्रमेय आदि सोलह पदार्थों का ज्ञान मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला है

— 'प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजन— दृ

ष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितंडाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थाना  
नां तत्त्वज्ञानानिःश्रेयसाधिगमः' (न्यायसूत्र, 1.1.1)।

## 2.2.4 ईश्वर या परमात्मा

न्याय दर्शन में आत्मा के दो भेद बतलाए गये हैं — जीवात्मा और परमात्मा। जीवात्मा अल्पज्ञ, अनित्य एवं बन्धनग्रस्त है, वहीं परमात्मा सर्वज्ञ, नित्य एवं स्वतन्त्र है, इसे ही ईश्वर कहा गया है। ईश्वर की सत्ता सिद्धि हेतु उदयनाचार्य ने कुसुमाञ्जलि में इन हेतुओं से की है —

“कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः।

वाक्यात् संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः।”

- 1) **कार्यात्** : जैसे घटोत्पत्ति का उत्पादक (कर्ता) कुलाल है, उसी प्रकार जगत् के सभी पदार्थों का कर्ता भी ईश्वर ही है।
- 2) **आयोजनात्** : जड़ परमाणुओं के संयोग से ही जगत् की उत्पत्ति होती है। अतः जड़ परमाणुओं का आयोजन भी स्वयं नहीं हो सकता है। अतः वह चेतन ईश्वर से ही सम्भव है।
- 3) **धृत्यादेः**— यदि कोई चेतन इस जगत् को धारण नहीं करता है, तो निश्चय ही यह स्थित न होकर गिर पड़ता, परन्तु ऐसा नहीं होता है।
- 4) **पदात्** : जैसे भवनादि का निर्माण किसी कुशल निर्माता के द्वारा ही सम्भव है, वैसे ही सृष्टि जैसे गूढ़ कार्य निर्माण भी किसी विशेष चेतनायुक्त ईश्वररूपी कर्ता के द्वारा ही सम्भव है।
- 5) **प्रत्ययतः** — श्रुति ही परमप्रमाण है तथा इसका निर्माता ईश्वर ही है। अतः श्रुति का ज्ञान भी ईश्वर का ही परिचायक है।
- 6) **श्रुतेः** — श्रुति में भी ईश्वर की ही सिद्धि प्रबल प्रमाणों द्वारा प्रस्तुत की गई है।
- 7) **वाक्यात्** — पुराणों के कर्ता के समान वेदों का भी कर्ता अवश्य ही होगा, जो कि निश्चय ही ईश्वर है।
- 8) **संख्या-विशेषात्** : परमाणुओं में द्वित्व संख्या किसी चेतन पुरुष की अपेक्षा बुद्धि द्वारा ही सम्भव है। अतः द्वयणुकों में संख्या की उत्पत्ति भी ईश्वर की ही परिचायक है।

### 2.2.5 वैशेषिक दर्शन का परिचय

न्याय-दर्शन के समानतन्त्र के रूप में विख्यात वैशेषिक दर्शन का नाम यद्यपि न्याय के बाद लिया जाता है, किन्तु वस्तुतः यह न्याय से अधिक प्राचीन दर्शन माना जाता है। विशेष को एक पदार्थ मानने के कारण इसे वैशेषिक कहा गया, ऐसा विद्वानों का मत है। वैशेषिक का महत्त्व विद्वान-मण्डली में एक कथन के द्वारा स्पष्ट होता है, 'कणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम्' अर्थात् कणाद का वैशेषिक दर्शन और पाणिनि का व्याकरण सब शास्त्रों में उपकारक हैं। वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद हैं।

अन्य भारतीय दर्शनों के समान इस दर्शन का उद्देश्य भी मोक्ष की प्राप्ति है। वैशेषिक के अनुसार धर्म के ज्ञान से जीवात्मा मोक्ष की प्राप्ति करता है। वैशेषिक-सूत्र का प्रथम सूत्र है, 'अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः' अर्थात् अब धर्म की व्याख्या करते हैं। दूसरे सूत्र में कहते हैं — 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसिद्विस्स धर्मः' अर्थात् जिससे (यथार्थ ज्ञान) अभ्युदय और निःश्रेयस (मोक्ष) की सिद्धि हो, वही धर्म है।

### 2.2.6 वैशेषिक दर्शन का साहित्य

- 1) **महर्षि कणाद** : महर्षि कणाद ने वैशेषिक सूत्रों की रचना की। वैशेषिक सूत्रों की रचना तिथि निश्चित करना कठिन है, परन्तु यह निश्चित माना जाता है कि ये बौद्ध काल से पूर्व की रचना है। वैशेषिक सूत्र में 10 अध्याय, 20 आह्निक तथा 370 सूत्र हैं।

- 2) **प्रशस्तपाद** : वैशेषिक सूत्रों पर प्रशस्तपाद ने 'पदार्थधर्मसङ्ग्रह' नामक भाष्य लिखा जो इस दर्शन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।
- 3) **व्योमशिव** : प्रशस्तपादभाष्य पर आचार्य व्योमशिव ने एक टीका लिखी जिसका नाम 'व्योमवती' है।
- 4) **श्रीधर** : 'न्यायकन्दली' प्रशस्तपादभाष्य पर आचार्य श्रीधर की प्रसिद्ध टीका है। 'न्याय कन्दली' अपने प्रसाद गुण और विशद व्याख्या के कारण वैशेषिक दर्शन के जिज्ञासुओं के लिए श्रेष्ठतम टीका है।
- 5) **उदयन** : आचार्य उदयनद्वारा रचित 'किरणावलि' प्रशस्तपादभाष्य की टीका है।
- 6) **श्रीवत्साचार्य** : प्रशस्तपादभाष्य पर आचार्यकृत टीका 'लीलावती' नाम से प्रसिद्ध है।
- 7) **शंकरमिश्र** : प्रसिद्ध वैशेषिकाचार्य शंकरमिश्र ने वैशेषिक सूत्र पर 'उपस्कारवृत्ति' तथा प्रशस्तपादभाष्य पर 'कणादरहस्य' का प्रणयन किया है।
- 8) **वरदराज** : आचार्य वरदराज ने वैशेषिक परम्परा में 'तार्किकरक्षा' नामक प्रकरणग्रन्थ लिखा है।
- 9) **शिवादित्य** : 10वीं शताब्दी के आचार्य शिवादित्य का ग्रन्थ 'सप्तपदार्थी' नाम से प्रसिद्ध है।
- 10) **वल्लभाचार्य** : 'न्यायलीलावती' नामक सुप्रसिद्ध कृति वल्लभाचार्य की है।
- 11) **अन्नम्भट्ट** : आचार्य अन्नम्भट्टकृत 'तर्कसंग्रह' वैशेषिक दर्शन का प्रवेशद्वार माना जाता है।
- 12) **विश्वनाथ पञ्चानन** : 16वीं शताब्दी के इस प्रसिद्ध विद्वान् ने 'भाषापरिच्छेद' (कारिकावली) नामक ग्रन्थ लिखा है जिस पर उनकी अपनी 'मुक्तावली' नामक सुप्रसिद्ध टीका भी है।

### 2.2.7 वैशेषिक दर्शन के तत्त्वों का विचार

वैशेषिक दर्शन के अंतर्गत विभिन्न तत्त्वों पर विचार किया गया है। जिनका विवरण इस प्रकार है :

**पदार्थ** : वैशेषिक दर्शन में पदार्थ का अर्थ है — 'पदस्य अर्थः पदार्थः'। जिसका अर्थ शब्द (पद) के द्वारा प्रकाशित किया जा सके अर्थात् पद (नाम) दिया जा सके। इस दर्शन में पदार्थों को सात मुख्य कोटियों में रखा गया है, इनके सात प्रकार बताये गये हैं — द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव। उल्लेखनीय है कि वैशेषिक सूत्र में केवल प्रथम छः पदार्थों का उल्लेख किया गया है, अन्तिम अभाव का नहीं, अभाव को बाद में जोड़ा गया है। ये द्रव्यादि छः पदार्थ भाव—पदार्थ कहे गये हैं।

**द्रव्य** : इस दर्शन के अनुसार द्रव्य वह है जो गुण और क्रिया का आधार है, उनका आश्रय स्थल है। "क्रियागुणवत् समवायिकरणमिति द्रव्यलक्षणम् (वैशेषिकसूत्र)। द्रव्य नौ प्रकार के हैं — पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन।

**गुण** : किसी भी द्रव्य का परिचय सामान्यतया उसके माध्यम से ही होता है तथा किसी द्रव्य के गुणों को उसकी विशेषताएँ कहते हैं, स्वतन्त्र पदार्थ नहीं। किन्तु वैशेषिक दर्शन में 'गुण' को भी एक पदार्थ कहा गया है। इस दर्शन में गुण की परिभाषा दी गई है –

‘द्रव्याश्रयगुणवान्संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुण लक्षणम्’ अर्थात् गुण द्रव्य पर आश्रित रहता है, इसमें कोई गुण नहीं होते हैं, यह द्रव्य के संयोग अथवा वियोग का कारण नहीं है, यह द्रव्य पर आश्रित तो रहता है किन्तु कर्म के समान वह द्रव्य में निष्क्रिय होकर रहता है। गुण 24 प्रकार के बताये गये हैं— ‘रूप रसगन्धस्पर्शास्संख्याः परिमाणानिपृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे बुद्ध्यः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः’।

**कर्म** : इस दर्शन के अनुसार कर्म, गुण के समान ही अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रखता अपितु द्रव्य पर ही आश्रित रहता है। कर्म का लक्षण है— ‘एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम्’ (वैशेषिकसूत्र, 1.1.17) अर्थात् कर्म वह पदार्थ है जो एक द्रव्य में आश्रित हो, गुण से भिन्न हो तथा संयोग-विभाग के प्रति साक्षात् कारण हो। वैशेषिक दर्शन में कर्म पाँच प्रकार के बताये गये हैं – उत्क्षेपणम् (ऊपर जाना), अवक्षेपणम् (नीचे जाना), आकुञ्चनम् (सिकुडना), प्रसारणम् (फैलना), गमनम् (चलना)।

**सामान्य** : ‘नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम्’ अर्थात् जो नित्य एवं एक होते हुए अनेकों में अनुगत हो उसे सामान्य कहते हैं। इस संसार के असंख्य पदार्थों में कुछ एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न, तो कुछ एक-दूसरे से समानता लिए हुए दिखाई देते हैं। समानता की प्रतीति का बोधक पदार्थ ही सामान्य कहलाता है। जैसे— भिन्न-भिन्न मनुष्यों में ‘मनुष्यत्व’ एक सामान्य विशेषता होती है, यही मनुष्यत्व एक सामान्य है। इसी प्रकार गायों में गोत्व एक सामान्य है, ऐसे ही अन्य में भी। सामान्य दो प्रकार का होता है – परसामान्य, अपरसामान्य।

**विशेष** : ‘नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषाः’ अर्थात् नित्य द्रव्यों में रहने वाले व्यावर्तक धर्म को ‘विशेष’ कहते हैं। वैशेषिक दर्शन में दो समान दिखने वाली वस्तुओं आदि में अन्तर स्पष्ट कर लेने को विशेष अर्थ में नहीं लिया गया है, अपितु इस दर्शन के अनुसार जिनके टुकड़े नहीं किए जा सकते, ऐसे अविभाज्य द्रव्य (वैशेषिक दर्शन में जिन्हें परमाणु कहा गया है) के मध्य व्यावर्तन करने वाले पदार्थ ही विशेष हैं। विशेष एक परमाणु को दूसरे से पृथक् बताने वाला पदार्थ है।

**समवाय** : ‘अयुतसिद्धयोः सम्बन्धः समवायः’ अर्थात् अयुतसिद्ध पदार्थों के मध्य का सम्बन्ध ‘समवाय’ कहलाता है। हमें संसार के वस्तुओं में अनेक प्रकार के सम्बन्ध दिखलाई पड़ते हैं। कुछ सम्बन्ध क्षणिक होते हैं और कुछ स्थाई। जैसे कागज और कलम का सम्बन्ध क्षणिक होता है तथा तन्तु और कपड़े का सम्बन्ध स्थाई अर्थात् नित्य होता है। नित्य सम्बन्ध ही समवाय कहलाता है।

**अभाव** : महर्षि कणाद ने केवल छः पदार्थ माने थे। अभाव को उन्होंने स्वतन्त्र पदार्थ की संज्ञा नहीं दी थी। किन्तु बाद के आचार्यों ने अभाव को भी एक पदार्थ माना है। अभाव, नास्ति शब्द का बोधक है। जैसे – रात्रिकाल में आकाश में सूर्य का न होना अथवा घड़े में जल का न होना अभाव है।

अभाव के दो भेद किए गये हैं — संसर्गाभाव, अन्योन्याभाव। एक वस्तु में दूसरी वस्तु के अभाव को संसर्गाभाव, जैसे — चन्द्रमा में गर्मी का अभाव अथवा अग्नि में शीतलता का अभाव। संसर्गाभाव के भेद — संसर्गाभाव के तीन भेद किये गये हैं— प्राग्भाव, ध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव। एक वस्तु का अन्य वस्तु न होना अन्योन्याभाव है। जैसे — चन्द्रमा, सूर्य नहीं है या अग्नि, जल नहीं है।

**परमाणुवाद :** यह वैशेषिक दर्शन का सृष्टि-सम्बन्धी सिद्धान्त है। वैशेषिक दर्शन जगत् का उपादान कारण असंख्य सूक्ष्मतम अणुओं (परमाणुओं) को बतलाता है, इसीलिए उसका सिद्धान्त परमाणुवाद कहा जाता है। परमाणुओं की विशेषता यहा है कि यह पदार्थ की सूक्ष्मतम इकाई होने से अविभाज्य एवम् अविच्छेद्य होते हैं, इनका और आगे विभाजन नहीं किया जा सकता।

**निःश्रेयस् :** निःश्रेयस् शब्द का प्रयोग वैशेषिक दर्शन में मोक्ष के लिए हुआ है। इस दर्शन में धर्म का लक्षण बताया गया है— 'यतो अभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः' अर्थात् जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस् की प्राप्ति हो वह धर्म है। निःश्रेयस् प्राप्ति हेतु साधन बताये गये हैं — तत्त्वज्ञान, श्रद्धा, निष्कामकर्म एवं ईश्वरीयकृपा। द्रव्यादि सप्त पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्य ज्ञान से मुक्ति की उपलब्धि होती है।

## 2.3 सांख्य-योग दर्शन

### सांख्यदर्शन

#### 2.3.1 सांख्य-योग दर्शन का परिचय

भारतीय चिन्तन परम्परा में सांख्य दर्शन को प्राचीनतम दर्शन की संज्ञा दी जाती है। सांख्य शब्द की व्युत्पत्ति है — सम्+चक्षिङ्(ख्या)+अङ्+टाप् = संख्याय संख्या+अण् = सांख्य। 'संख्या' पद के द्विविध अर्थ किये जाते हैं। प्रथमतः 'संख्या' का अर्थ है सम्यक् ख्यान अर्थात् सम्यक् ज्ञान या विवेकज्ञान। इस दर्शन में प्रकृति एवं पुरुष के सम्यक् ज्ञान से कैवल्य का मार्ग प्रतिपादित किया गया है, इसलिए इसे सांख्य कहा जाता है। द्वितीय प्रकार से 'संख्या' शब्द का अर्थ गणना है। सांख्य दर्शन में 25 तत्त्वों की गणना की गई है, इसलिए भी इसको सांख्य कहते हैं। महाभारत में उपरोक्त दोनों अर्थों को समाविष्ट करते हुए सांख्य दर्शन की प्रशंसा की गई है —

संख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते।

तत्त्वानि च चतुर्विंशत्तेन सांख्यं प्रकीर्तितम्॥

यद्यपि सांख्यदर्शन के सिद्धान्त बीजरूप में श्वेताश्वतरोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, कठोपनिषद्, महाभारत, भगवद्गीता, मनुस्मृति, अर्थशास्त्र, चरकसंहिता, वायुपुराण आदि में उपलब्ध होते हैं तथापि एक स्वतन्त्र दर्शन के रूप में इसका प्रवर्तन कपिल मुनि ने किया है।

#### 2.3.2 सांख्यदर्शन का साहित्य

क) **सांख्यसूत्र :** कपिल मुनि द्वारा प्रणीत 'सांख्यसूत्र' सांख्य दर्शन की प्राचीनतम रचना मानी जाती है। सांख्यसूत्र में कुल 6 अध्याय तथा 537 सूत्र हैं जिनमें सांख्य दर्शन के मूल सिद्धांतों का विवेचन किया गया है। सांख्य सूत्र यद्यपि अत्यन्त प्राचीन हैं किन्तु अधिकांश विद्वान् वर्तमान में उपलब्ध सांख्यसूत्र को

प्रामाणिक नहीं मानते हैं। सांख्यसूत्र पर अनिरुद्ध ने 14-15वीं शताब्दी में 'अनिरुद्धवृत्ति' नाम से एक व्याख्या लिखी जो सांख्यसूत्रों की प्राचीनतम व्याख्या है। 16वीं शताब्दी में विज्ञानभिक्षु नामक प्रसिद्ध सांख्याचार्य ने सांख्यसूत्र के व्याख्या रूप से 'सांख्यप्रवचनभाष्य' की रचना की। 'अनिरुद्धवृत्ति' पर 17वीं शताब्दी में महादेव वेदान्तिन् नामक विद्वान् ने 'सांख्यसूत्रवृत्तिसार' नाम से टीका लिखी।

- ख) **तत्त्वसमाससूत्र** : तत्त्वसमाससूत्र को भी कपिल मुनि की रचना माना जाता है। यह ग्रन्थ अत्यन्त संक्षेप में है जिसमें कुल 22 सूत्र हैं। विज्ञानभिक्षु के शिष्य भावागणेश ने इस ग्रन्थ की विस्तृत व्याख्या लिखी जो 'तत्त्वयाथार्थदीपन' नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त आचार्य क्षेमेन्द्र ने 17वीं शताब्दी में इस ग्रन्थ पर 'सांख्यतत्त्वविवेचन' नाम से व्याख्या लिखी है।
- ग) **सांख्यकारिका** : ईश्वरकृष्ण द्वारा रचित 'सांख्यकारिका' सांख्य दर्शन का सर्वाधिक प्रामाणिक एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ माना जाता है। ईश्वरकृष्ण का समय 400-100 ई.पू. के मध्य स्वीकार किया जाता है। ईश्वरकृष्ण ने 'षष्ठितन्त्र' नामक विस्तृत सांख्यग्रन्थ का संक्षेपण करते हुए कुल 70 कारिकाओं में सांख्यदर्शन के मूल सिद्धान्तों का विवेचन अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया है। सांख्यकारिका पर अनेक टीका एवं व्याख्या ग्रन्थों की रचना हुई है जिनमें आचार्य माठर की 'माठरवृत्ति'; गौडपाद रचित 'गौडपादभाष्य'; शंकर विरचित 'जयमंगला' टीका, किसी अज्ञात लेखक की 'युक्तिदीपिका' टीका तथा वाचस्पति मिश्र विरचित 'तत्त्वकौमुदी' सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।
- घ) **सांख्यतत्त्वकौमुदी** : भारतीय दार्शनिक चिंतन परम्परा के अत्यन्त महनीय आचार्य वाचस्पति मिश्र ने सांख्यकारिका पर एक टीका ग्रन्थ का निर्माण किया जो सांख्यतत्त्वकौमुदी नाम से विश्रुत है तथा इसे सांख्यकारिका की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण टीका होने का गौरव प्राप्त है। आचार्य ने अपनी इस टीका में कारिका के सिद्धान्तों का विस्तृत एवं तर्कसम्मत विवेचन किया है। तत्त्वकौमुदी पर भी अनेक टीका ग्रन्थ लिखे गए जिनमें से कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं - रघुनाथ तर्कवागीश कृत 'सांख्यतत्त्वविलास'; नारायण तीर्थ कृत 'तत्त्वचन्द्रिका'; तारानाथ तर्कवाचस्पति कृत 'उपोद्घात'; बालराम उदासीन कृत 'विद्वतोषिणी' तथा श्रीकृष्णवल्लभाचार्य कृत 'किरणावली'।
- ङ) **अन्य स्वतन्त्र ग्रन्थ** : 16वीं शताब्दी में विज्ञानभिक्षु द्वारा रचित 'सांख्यसार'; 17वीं शताब्दी में श्रीधर विरचित 'सांख्यदीपिका'; स्वयंप्रकाश यति रचित 'गुणत्रयविवेक' तथा 18वीं शताब्दी में कविराजयति कृत 'सांख्यतत्त्व प्रदीप' इत्यादि कुछ प्रसिद्ध सांख्यग्रन्थ हैं जो स्वतन्त्र चिंतन परम्परा में लिखे गए हैं।

### 2.3.3 सांख्य दर्शन के तत्त्वों का विचार

सांख्य द्वैतवादी एवं वस्तुवादी दर्शन है। सांख्य के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष दो मूल तत्त्व हैं। इन्हीं दो तत्त्वों के संयोग से 23 अन्य तत्त्वों की उत्पत्ति होती है जिससे सृष्टि का निर्माण होता है। इन्हीं दोनों तत्त्वों का विवेकज्ञान हो जाने पर प्राणी दुःखत्रय से निवृत्त होकर कैवल्य को प्राप्त कर लेता है। सांख्यदर्शन के प्रमुख प्रतिपाद्य विषय अग्रलिखित हैं -

क) **प्रमाण** : सांख्य दर्शन में तीन प्रमाण स्वीकृत हैं — प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम (शब्द)। इनका स्वरूप सांख्यकारिका में इस प्रकार से निरूपित किया गया है —

प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टं त्रिविधमनुमानमाख्यातम् ।  
तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकमाप्तश्रुतिराप्तवचनं तु ।।

अर्थात् विषय से सन्निकृष्ट इन्द्रिय पर आश्रित अध्यवसाय (निश्चयात्मक ज्ञान) को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। लिङ्ग अर्थात् व्याप्य तथा लिङ्गि अर्थात् व्यापक के व्याप्ति ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान अनुमान प्रमाण कहलाता है। अनुमान के तीन भेद हैं — पूर्ववत्, शेषवत् तथा सामान्यतोदृष्ट। पूर्ववत् अनुमान का विषय ऐसी किसी वस्तु का सामान्य रूप होता है, जिसके विशिष्ट रूप का पहले ही प्रत्यक्ष हो चुका है; यथा — महानस में धूम-अग्नि के साहचर्य को देखने के उपरान्त पर्वतीय अग्नि का अनुमान। सामान्यतोदृष्ट अनुमान का विषय ऐसी सामान्य वस्तु होता है जिसका अपना विशिष्ट रूप पहले न देखा गया हो; यथा — इन्द्रिय की सत्ता का अनुमान। शेषवत् अनुमान वह है जहाँ किसी वस्तु की जहाँ-जहाँ सम्भावना हो, वहाँ सर्वत्र निषेध करके अन्यत्र सम्भावना न होने के कारण बचे हुए (शेष) पदार्थ में उसका ज्ञान किया जाय; यथा — पुरुष के अपरिणामी होने का अनुमान। आप्तवचन अर्थात् किसी यथार्थवक्ता के द्वारा प्रयुक्त वाक्य को सुनकर श्रोता को होने वाले अर्थज्ञान को आगम प्रमाण कहते हैं।

ख) **प्रमेय** : सांख्य दर्शन में मुख्य प्रमेय दो हैं — प्रकृति एवं पुरुष। प्रकृति जड़ एवं त्रिगुणात्मिका (सत्त्व-रजस-तमस-स्वरूपा) है। प्रकृति से ही समस्त जड़ जगत् की उत्पत्ति होती है। अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण प्रकृति को 'अव्यक्त' तथा प्रलय में जगत् को अपने में लीन कर लेने से उसे 'प्रधान' भी कहा जाता है। सांख्य दर्शन में प्रकृति की सत्ता को अनुमान प्रमाण से सिद्ध किया जाता है —

भेदानां परिमाणात्समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च ।

कारणकार्यविभागादविभागाद्वैश्वरूप्यस्य ।।

कारणमस्त्यव्यक्तम् प्रवर्तते त्रिगुणतः समुदयाच्च ।

परिणामतः सलिलवत् प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् ।। (सांख्यकारिका, 15-16)

अर्थात् जागतिक कार्यों के परिमित होने, कारण के सदृश होने, कारण की शक्ति से उत्पन्न होने, कारण से ही उत्पन्न होने तथा उसी में तिरोभूत होने से उनका एक कारण अवश्य होता है वही कारण प्रकृति है। प्रकृति से ही महत् (बुद्धि) से लेकर महाभूतपर्यन्त जगत् की सृष्टि होती है।

सांख्यदर्शन में चेतन सत्ता को 'पुरुष' कहा जाता है। पुरुष स्वभाव से शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, साक्षी, केवली, मध्यस्थ, द्रष्टा, उदासीन, अकर्तता और अविकारी है। पुरुष के अस्तित्व में सांख्य अग्रलिखित प्रमाण प्रस्तुत करता है —

संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात् ।

पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ।। (सांख्यकारिका, 17)

अर्थात् संघात (वस्तु-समुदाय) के दूसरों के लिए होने, त्रिगुणत्व आदि का अभाव होने, सभी त्रिगुणात्मक पदार्थों के लिए अधिष्ठाता एवं भोक्ता की अपेक्षा होने तथा कैवल्य के लिए प्रवृत्ति होने के कारण पुरुष की सत्ता सिद्ध होती है। सांख्यमतानुसार पुरुष संख्या में अनेक हैं। जन्म-मरण तथा इन्द्रियों की



व्यवस्था, युगपत् प्रवृत्ति का अभाव तथा गुणों के भेद के कारण पुरुष की अनेकता सिद्ध होती है —

जननमरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च ।

पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ।। (सांख्यकारिका, 18)

आस्तिक दर्शन :  
न्याय—वैशेषिक,  
सांख्य—योग,  
मीमांसा—वेदान्त

- ग) **सृष्टि** : सांख्यमतानुसार पुरुष के द्वारा प्रकृति का दर्शन तथा प्रकृति के द्वारा पुरुष का कैवल्य सम्पन्न करने के लिए पंगु—अन्धवदन्याय से दोनों का संयोग होता है जिससे सृष्टि होती है। सृष्टि प्रक्रिया में सर्वप्रथम प्रकृति से महत् (बुद्धि) की उत्पत्ति होती है; पुनः महत् से अहंकार उत्पन्न होता है। सात्त्विक अहंकार से एकादश इन्द्रियाँ (5 ज्ञानेन्द्रिय+5 कर्मेन्द्रिय+मन) उत्पन्न होती हैं तथा तामस अहंकार से पञ्चतन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) उत्पन्न होते हैं। पञ्चतन्मात्राओं से पञ्च महाभूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी) की उत्पत्ति होती है। प्रकृति से उत्पन्न होने वाले इन 23 विकारों को 'व्यक्त' की संज्ञा दी जाती है।
- घ) **सूक्ष्मशरीर** : सांख्यमतानुसार सूक्ष्म शरीर 18 तत्त्वों से मिलकर निर्मित होता है। ये तत्त्व हैं — महत्+अहंकार+एकादश इन्द्रिय+पञ्च तन्मात्राएँ। यह सूक्ष्मशरीर सृष्टि के आरम्भ में प्रकृति द्वारा प्रत्येक पुरुष के लिए पृथक्-पृथक् उत्पन्न किया जाता है तथा इसी शरीर के द्वारा पुरुष जगत् में विभिन्न योनियों में संसरण करता है।
- च) **गुणत्रय** : प्रकृति एवं उससे उत्पन्न समस्त विकृतियाँ त्रिगुणात्मक होती हैं। सत्त्व, रजस एवं तमस ये तीनों ही त्रिगुण कहलाते हैं। सत्त्वगुण लघु एवं प्रकाशकय रजस प्रवृत्तिशील एवं उत्तेजक तथा तमस गुरु एवं अवरोधक होता है। सत्त्वगुण सुखस्वरूप, रजसगुण दुःखस्वरूप तथा तमसगुण मोहस्वरूप होता है तथा ये क्रमशः प्रकाशन, प्रवर्तन एवं नियमन को सम्पन्न करते हैं। सृष्टिप्रक्रिया में ये तीनों गुण प्रदीपवत् परस्पर एक दूसरे का अभिभव, आश्रय एवं सहकारी बनते हुए महदादि क्रम से पदार्थों की उत्पत्ति करते हैं।
- छ) **सत्कार्यवाद** : सत्कार्यवाद सांख्य दर्शन का कार्यकारण सिद्धान्त है। सत्कार्य का अर्थ है — 'कार्य कारणे सत्' अर्थात् कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व अपने कारण में सत् (विद्यमान) होता है। सांख्य मत में कार्य कोई नूतन उत्पत्ति नहीं है अपितु कार्य अपने कारण में सूक्ष्म रूप से विद्यमान होता है; जब कोई कर्ता कारणव्यापार का प्रयोग करता है तो कार्य स्थूल रूप में अभिव्यक्त हो जाता है। ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका में सत्कार्यवाद की सिद्धि हेतु अग्रलिखित युक्तियाँ प्रस्तुत की हैं —

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् ।

शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम् ।। (सांख्यकारिका, 9)

- ज) **कैवल्य** : सांख्यमत में पुरुष सर्वथा असंग, उदासीन एवं नित्यमुक्त है किन्तु शरीर के साथ अपना अभेद या तादात्म्य मानने के कारण वह त्रिविधदुरूखों की अनुभूति करने लगता है। वस्तुतः प्रकृतिजन्य स्थूलशरीर ही सुखदुःखादि भावों का उपभोग करता है तथा इस स्थूलशरीर का आश्रयभूत सूक्ष्मशरीर ही उन कर्मसंस्कारों के फलोपभोग हेतु विभिन्न योनियों में संसरण करता है; जैसा कि ईश्वरकृष्ण का कथन है —

तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित् ।

संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः ।। (सांख्यकारिका, 62)

अज्ञान या मिथ्याज्ञान ही बन्धन का मूलकारण है। सांख्य के अनुसार इस बन्धन से निवृत्ति का मार्ग 'व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञान' (विवेकज्ञान) है। सांख्यशास्त्रीय तत्त्वज्ञान से पुरुष का अपने असंग एवं केवल रूप का साक्षात्कार ही उसका कैवल्य कहलाता है –

एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम् ।

अविपर्ययाद् विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम् ।। (सांख्यकारिका, 64)

विवेकज्ञान के उपरान्त वर्तमान शरीर के क्षयपर्यन्त होने वाली मुक्ति 'जीवनमुक्ति' कहलाती है तथा शरीरक्षय के उपरान्त 'विदेहमुक्ति' की अवस्था होती है।

## योगदर्शन

### 2.3.4 योगदर्शन का परिचय

भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा में योगदर्शन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय परम्परा के अनुसार हिरण्यगर्भ को योगदर्शन का आदि उपदेष्टा स्वीकार किया जाता है। वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, कल्पसूत्रों, महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों में योग का वर्णन प्राप्त होता है। योगशास्त्र के इतिहास में महर्षि पतंजलि का अद्वितीय स्थान है जिन्होंने दूसरी शताब्दी ई.पू. में 'योगसूत्र' की रचना द्वारा वर्तमान में प्रचलित योगदर्शन की प्राणप्रतिष्ठा की है। सांख्य एवं योग दर्शन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है; सांख्य-योग दर्शन की तत्त्वमीमांसा एक है। मानव जीवन के परमपुरुषार्थ 'मोक्ष' की अवाप्ति हेतु सांख्य सैद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत करता है तो योग उसका व्यावहारिक या प्रायोगिक पक्ष। योग दर्शन में ईश्वर की पृथक् सत्ता स्वीकृत की जाती है अतः इसे 'शेष्वर सांख्य' की भी संज्ञा दी जाती है। सांख्यदर्शन में स्वीकृत 25 तत्त्वों के साथ ईश्वर को मिलाकर योग दर्शन में कुल 26 तत्त्व स्वीकार किये जाते हैं।

### 2.3.5 योगदर्शन का साहित्य

- क) **योगसूत्र** : योगसूत्र महर्षि पतंजलि की रचना है तथा इसका समय लगभग 200 ई. पू. स्वीकार किया जाता है। योगसूत्र चार पादों में विभक्त है तथा इसमें कुल 195 सूत्र हैं।
- ख) **योगभाष्य** : महर्षि पतंजलि के योगसूत्रों पर आचार्य व्यास ने भाष्य ग्रन्थ की रचना की है जो योगभाष्य, व्यासभाष्य, पातंजलभाष्य आदि नामों से प्रसिद्ध है।
- ग) **तत्त्ववैशारदी** : आचार्य व्यासकृत योगभाष्य पर 9वीं शताब्दी के महान दार्शनिक आचार्य वाचस्पति मिश्र ने एक टीका का प्रणयन किया जो 'तत्त्ववैशारदी' नाम से प्रसिद्ध है। यह टीका व्यासभाष्य के गूढ़ रहस्यों का सहजता से उद्घाटन करती है। प्रतिपादन शैली, विषय-गाम्भीर्य, भाषा एवं भाव सभी दृष्टियों से यह योगशास्त्र की सर्वोत्तम टीका मानी जाती है।
- घ) **राजमार्तण्डवृत्ति** : 11वीं शताब्दी के प्रसिद्ध आचार्य भोजराज ने योगसूत्रों पर एक वृत्ति ग्रन्थ की रचना की है जो 'राजमार्तण्डवृत्ति' नाम से प्रसिद्ध है। यह वृत्ति अत्यन्त स्पष्टता से योगदर्शन के सिद्धान्तों और मन्तव्यों का ख्यापन करती है।

- च) **योगवार्तिक** : योगभाष्य पर आचार्य विज्ञानभिक्षु ने योगवार्तिक नामक महनीय ग्रन्थ का प्रणयन किया है। इसका समय 16वीं शताब्दी का है। योगवार्तिक एक विस्तृत व्याख्या ग्रन्थ है जो योगभाष्य के रहस्यों को समझने में अत्यन्त उपयोगी है।
- छ) **अन्य ग्रन्थ** : विज्ञानभिक्षु के शिष्य भावागणेश ने योगसूत्र पर वृत्ति की रचना की है जिसका समय 17वीं शताब्दी का है। प्रसिद्ध वैयाकरण नागोजीभट्ट की 'छाया' व्याख्या, रामानन्द यति की 'मणिप्रभा', नारायण तीर्थकृत 'सूत्रार्थबोधिनी' तथा हरिहरानन्द आरण्य की 'भास्वती' टीका योगदर्शन के अन्य महत्वपूर्ण व्याख्यान ग्रन्थ हैं।

### 2.3.6 योगदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त

- क) **योग का स्वरूप** : योग शब्द दिवादिगणीय 'युज् समाधौ' धातु से घञ् प्रत्यय लगने से निष्पन्न होता है; अतः योग पद का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है – समाधि। जैसा कि आचार्य व्यास कहते भी हैं – 'योगः समाधिः स च सार्वभौमः चित्तस्य धर्मः'। महर्षि पतंजलि ने योग का लक्षण किया है – 'योगः चित्तवृत्तिनिरोधः' अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध (संयमन) ही योग है। चित्तवृत्तिनिरोध रूप यह योग दो प्रकार का है –

- 1) **सम्प्रज्ञात योग** : चित्त की एकाग्र भूमि में होने वाला वृत्तिनिरोध जिसमें केवल चित्त की राजस एवं तामस वृत्तियों का निरोध होता है, उसे सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। इस समाधि में चित्त की सात्त्विक वृत्ति पूर्णरूप से उदित रहती है तथा साधक को ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय का भान होता रहता है।
- 2) **असम्प्रज्ञात योग** : वह समाधि जिसमें चित्त की सात्त्विक वृत्तियों का भी निरोध हो जाता है, उसे असम्प्रज्ञात योग कहते हैं। इस समाधि में केवल निरोधसंस्कार ही चित्त में अवशिष्ट रह जाते हैं तथा किसी प्रकार का बुद्धिकृत ज्ञान नहीं रह जाता है।

- ख) **योगोपाय** : महर्षि पतंजलि के अनुसार चित्तवृत्ति निरोध का प्रधान उपाय है – अभ्यास एवं वैराग्य। वैराग्य के दो भेद हैं – परवैराग्य एवं अपरवैराग्य। लौकिक एवं अलौकिक सभी प्रकार के विषयों के प्रति वितृष्णा की भावना होना 'अपरवैराग्य' है तथा बुद्धिजन्य ज्ञान के प्रति भी उदासीन एवं निःस्पृह हो जाना 'परवैराग्य' है। अपरवैराग्य से सम्प्रज्ञात समाधि तथा परवैराग्य से असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि होती है। चित्त को स्थिर करने के लिए योगसाधनों का अनुष्ठान करना ही 'अभ्यास' कहलाता है।

### ग) योगसाधना के अंग

योग के आठ अंग बताए हैं –

'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि'।

- 1) **यम** : यम के 5 भेद हैं – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह। किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार (शारीरिक, वाचिक, मानसिक) से कष्ट न पहुँचाना 'अहिंसा' है। जो वस्तु जैसी है उसके विषय में वैसा ही कथन करना 'सत्य' है। किसी अन्य की वस्तु का बिना उसकी अनुमति

के ग्रहण करने की इच्छा का अभाव ही 'अस्तेय' है। जननेन्द्रिय का निग्रह 'ब्रह्मचर्य' है। विषयगत दोषों को जानकर उनका ग्रहण न करना 'अपरिग्रह' कहलाता है।

- 2) **नियम** : नियम भी 5 प्रकार का होता है — शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान। बाह्य एवं आन्तरिक मलों का प्रक्षालन 'शौच' कहलाता है। विद्यमान साधनों से अधिक साधनों का संग्रह करने की अनिच्छा 'सन्तोष' है। विपरीत परिस्थितियों को सहन करना 'तप' है। मोक्षशास्त्रों का अध्ययन अथवा ओंकार का जप 'स्वाध्याय' है। ईश्वर के प्रति सभी कर्मों का अर्पण करना 'ईश्वरप्रणिधान' है।
- 3) **आसन** : 'स्थिरसुखमासनम्' अर्थात् शरीर की वह सुखप्रद स्थिति जिसमें अवस्थित होकर समाधि लगायी जा सके, 'आसन' कहलाती है।
- 4) **प्राणायाम** : 'श्वासप्रश्वासयोगतिविच्छेदः प्राणायामः' अर्थात् श्वास एवं प्रश्वास की गति का नियमन करना 'प्राणायाम' कहलाता है। यह रेचक, पूरक और कुम्भक के भेद से तीन प्रकार का होता है।
- 5) **प्रत्याहार** : 'स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः'। जब साधक अपनी इन्द्रियों का विषयों के साथ सम्पर्क नहीं होने देता तो इन्द्रियाँ चित्त के स्वरूप का अनुकरण सा कर लेती हैं, यही 'प्रत्याहार' कहलाता है।
- 6) **धारणा** : 'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा' अर्थात् चित्त की सात्त्विक वृत्ति को किसी प्रदेश में स्थापित करना 'धारणा' है।
- 7) **ध्यान** : 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'। धारणा के देश (विषय) में ध्येयरूप आलम्बन वाले तथा अन्य ज्ञानों से अस्पृष्ट ज्ञान की अविच्छिन्न धारा ही 'ध्यान' है।
- 8) **समाधि** : 'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः' अर्थात् ध्यान ही जब ध्येय के स्वभाव का आवेश होने के कारण ध्येय के आकर से भासित तथा अपने रूप से रहित जैसा हो जाता है, उसे 'समाधि' कहते हैं।

**घ) ईश्वर** : योग दर्शन में ईश्वर की सत्ता पुरुषविशेष के रूप से स्वीकृत की गई है। महर्षि पतंजलि के अनुसार 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'। अविद्यादि पञ्चक्लेश, धर्माधर्मरूप कर्म, कर्म का फल 'विपाक' तथा विपाकजन्य संस्कार 'आशय' के परामर्श (संस्पर्श) से रहित विशेष प्रकार का पुरुष ही 'ईश्वर' कहलाता है। योगमत में ईश्वर सर्वज्ञ, कालानवच्छिन्न तथा पूर्ववर्ती गुरुओं का भी गुरु है। ईश्वर का अभिधायक शब्द 'ओंकार' है जिसका जप करने तथा ईश्वर की भावना करने से जीवात्मा के स्वरूप का दर्शन तथा विघ्नों का अभाव होता है।

**च) कैवल्य** : सांख्ययोगशास्त्रीय तत्त्वमीमांसा के अनुसार जब साधक प्रकृति एवं पुरुष का विवेकज्ञान कर लेता है तो उसे कैवल्य की अनुभूति हो जाती है। योगसूत्र के अनुसार 'पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चित्तिशक्तिरिति' अर्थात् पुरुषार्थ को पूर्णकर चुके सत्त्वादि गुणों का प्रतिप्रसव (प्रकृति में लीन हो जाना) कैवल्य है अथवा पुरुष (चेतन आत्मतत्त्व) का अपने स्वरूप (असंग, उदासीन, केवली, द्रष्टा आदि) में प्रतिष्ठित हो जाना कैवल्य है।

## 2.4 मीमांसा—वेदान्त दर्शन

आस्तिक दर्शन :  
न्याय—वैशेषिक,  
सांख्य—योग,  
मीमांसा—वेदान्त

मीमांसा वेदांत दर्शन में प्रथमतः मीमांसा दर्शन का परिचय, साहित्य एवं मीमांसा दर्शन के तत्वों का अध्ययन किया जाएगा।

### 2.4.1 मीमांसा दर्शन का परिचय

मनीषियों द्वारा आस्तिक दर्शनों में मीमांसा दर्शन को अग्रणी दर्शन के रूप में स्वीकार किया गया है, क्योंकि यह पूर्णतः वेदों पर आधारित है। वैदिक संस्कृति का विकास दो प्रकार से हुआ है यह सर्वोल्लिखित है। एक ओर वेदों के ब्राह्मणग्रन्थों के यज्ञ यागादि कर्मकाण्डों का शास्त्रीय विकास तथा दूसरी ओर उपनिषदों के ज्ञानकाण्ड के आधार पर वैदिक दर्शन का विकास हुआ। इन्हीं से क्रमशः मीमांसा और वेदान्त दर्शन का विकास हुआ है। इन्हें ही पूर्वमीमांसा और उत्तर—मीमांसा भी कहा जाता है।

पाणिनीय व्याकरणानुसार 'मान्' धातु से पूजा अर्थ में 'सन्' प्रत्यय होकर स्त्रीलिंगबोधक 'अ' प्रत्यय तथा 'टाप्' प्रत्यय के जोड़ने से मीमांसा शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ 'विचार', पूजित विचार अथवा पूजित जिज्ञासा आदि है। श्रुतियों के पारस्परिक विरोध का परिहार करके उनमें एक—वाक्यता स्थापित करने के लिये जो विचार—विमर्श किया जाता था उसे मीमांसा कहते थे। कालान्तर में यह शब्द किसी भी विषय के समीक्षात्मक विवेचन के लिए प्रयोग होने लगा तथा ये सभी शब्द जिज्ञासा, मीमांसा, समीक्षा पर्यायावाची हो गये। मीमांसा का अपर नाम पूर्वमीमांसा/कर्ममीमांसा/धर्ममीमांसा भी है।

धर्म (यज्ञ—परम्परा) की रक्षा करने के लिए उसके प्रमाण, उसका स्वरूप, उसका साधन और अन्त में फल बतला कर अर्थात् श्रेय तथा प्रेय दोनों की प्राप्ति कराते हुए समाज को सुव्यवस्थित रखना ही मीमांसा दर्शन का प्रमुख उद्देश्य है।

### 2.4.2 मीमांसा दर्शन का साहित्य

- 1) **जैमिनि** : मीमांसा दर्शन के सूत्रकार के रूप में जैमिनि को माना जाता है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'मीमांसासूत्र' है, जिसे 'जैमिनि सूत्र' भी कहा जाता है। जैमिनि ने मीमांसा सूत्रों की रचना 12 अध्यायों में की है, इसलिए यह द्वादशलक्षणी के नाम से भी जाना जाता है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में 60 पाद तथा सूत्रों की संख्या प्रायः 2652 प्राप्त होती है। सूत्रों का विभाजन विषय की दृष्टि से अधिकरणों में है। सम्पूर्ण अधिकरणों की संख्या 915 मानी जाती है। कतिपय विद्वान् 'संकर्षणकाण्ड' को जैमिनिकृत ही मानते हैं, इसे देवताकाण्ड भी कहा जाता है। यह पूर्वमीमांसा का ग्रन्थ है। इसमें उपासना का विवेचन प्राप्त होता है।
- 2) **शबरस्वामी** : मीमांसासूत्र पर प्राप्त सर्वप्रथम व्याख्या शबरभाष्य के नाम से प्रसिद्ध है, जिसके लेखक शबरस्वामी हैं।
- 3) **कुमारिलभट्ट** : कुमारिलभट्ट ने शबरभाष्य के ऊपर स्वतन्त्र दृष्टि से विद्वतापूर्ण टीकाएं लिखी हैं, जो तीन भागों में विभाजित हैं — श्लोकवार्तिक, तन्त्रवार्तिक तथा टुप्टीका।
- 4) **प्रभाकर** : प्रभाकर ने शबरभाष्य पर पर दो टीकाएं लिखी हैं, एक 'लघ्वी' जो 'विवरण' नाम से तथा दूसरी 'बृहती' जो 'निबन्धन' नाम से प्रचलित है।

- 5) **मंडन मिश्र** : मीमांसा दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान् मंडन मिश्र ने 'विधि विवेक' तथा 'मीमांसा-अनुक्रमणी' नामक ग्रन्थ की रचना की है।
- 6) **पार्थसारथि मिश्र** : कुमारिल के अनुयायियों में से प्रसिद्ध नवीं शताब्दी में उत्पन्न पार्थसारथि मिश्र हैं, उनकी प्रमुख रचनाएं – शास्त्रदीपिका, तन्त्ररत्न और न्यायरत्नमाला हैं।
- 7) **मुरारि मिश्र** – मुरारि मिश्र का काल 12वीं सदी का अन्त तथा 13वीं सदी के प्रारम्भ के मध्य माना जाता है। यह अनुमानित है कि इन्होंने मीमांसाशास्त्र के एक नवीन सम्प्रदाय 'मुरारेस्तृतीयः पन्थाः' का प्रचलन किया था।
- 8) **शालिकनाथ मिश्र**– प्रभाकर मतानुयायी आचार्य शालिकनाथ मिश्र ने बृहती पर 'ऋजुविमला' नाम से टीका लिखी है। उनकी एक स्वतन्त्र कृति 'प्रकरणपञ्चिका' नाम से ख्यात है। शबरभाष्य पर उन्होंने 'परिशिष्ट' नाम से संक्षिप्त टिप्पणी ग्रन्थ भी लिखा है।
- 9) **भवनाथ मिश्र** : आचार्य भवनाथकृत 'नयविवेक' मीमांसा दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।
- 10) **माधवाचार्य** : माधवाचार्य ने मीमांसादर्शन का पद्यमय भाष्य लिखा है जो 'जैमिनीयन्यायमालाविस्तर' नाम से प्रसिद्ध है।
- 11) **आपदेव** : आपदेव रचित 'मीमांसान्यायप्रकाश' मीमांसादर्शन का प्राथमिक ग्रन्थ है।
- 12) **लौगाक्षिभास्कर** : लौगाक्षिभास्कर का समय 1600 ई0 माना जाता है। इनकी दो कृतियाँ प्राप्त होती हैं – तर्ककौमुदी तथा अर्थसंग्रह।

#### 2.4.3 मीमांसा के तत्त्वों का विचार

- क) **प्रमाण** : यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के साधन को प्रमाण कहा गया है। न्याय दर्शन के अनुसार ही मीमांसक भी यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के साधन को प्रमाण स्वीकारते हैं, परन्तु स्मृति और संशय को वे यथार्थ ज्ञान नहीं मानते हैं। जैमिनि प्रमाण के तीन प्रकार मानते हैं – 1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. शब्द। प्रभाकर इन तीनों के अतिरिक्त उपमान और अर्थापत्ति को भी प्रमाण मानते हैं। कुमारिल इनके साथ-साथ अनुपलब्धि को भी प्रमाण स्वीकारते हैं।
- 1) **प्रत्यक्ष प्रमाण** : (इन्द्रियसन्निकर्षजं ज्ञानं प्रत्यक्षम्) साक्षात् इन्द्रिय सम्पर्क से प्राप्त ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है।
  - 2) **अनुमान प्रमाण** : (व्याप्यदर्शनादसन्निकृष्टार्थज्ञानमनुमानम्) व्याप्य के ग्रहण से असन्निकृष्ट अर्थ का ज्ञान करना अनुमान कहलाता है।
  - 3) **शब्द प्रमाण** : (तत्र तावत् पदैर्ज्ञातैः पदार्थस्मरणे कृते असन्निकृष्टवाक्यार्थज्ञानं शाब्दमितीर्यते) सत्यज्ञान होने के पश्चात् उन पर विश्वास करना ही आप्त-कथन कहलाता है।
  - 4) **उपमान प्रमाण** : (दृश्यमानार्थसादृश्यात् स्मर्यमाणार्थगोचरमुपमानम्) – समानता का बोध ही उपमान प्रमाण कहलाता है।
  - 5) **अर्थापत्ति** : (अनुपपद्यमानार्थदर्शनात् तदुपपादकीभूतार्थान्तरकल्पनम् अर्थापत्तिः) किसी अनुपपन्न अर्थ की उपपत्ति के लिए अर्थान्तर की कल्पना अर्थापत्ति कहलाती है।

6) **अनुपलब्धि** : (उपलब्ध्ययोग्यस्यानुपलब्धिः अभावः) उपलब्ध्ययोग्य पदार्थ की उपलब्धि न होना अभाव है।

ख) **‘धर्म’ विचार** : मीमांसा का प्रधान विषय धर्म है, धर्म की व्याख्या करना ही इस दर्शन का प्रयोजन बताया गया है। याग आदि कर्म ही धर्म हैं (यागादिरेव धर्मः)। ‘वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्मः’, अर्थात् जो वेद द्वारा प्रतिपादित हो, प्रयोजनयुक्त हो तथा अर्थवान् हो उसे धर्म कहते हैं।

ग) **भावना विचार** : अर्थसंग्रह में भावना का लक्षण “भवितुर्भवानुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः” किया गया है जिसका अर्थ है – उत्पत्तिशील की उत्पत्ति में कारणभूत जो उत्पादयिता का मानसिक व्यापार होता है, उसे भावना कहते हैं। भावना दो प्रकार की होती हैं 1. शाब्दीभावना 2. आर्थीभावना।

1) **शाब्दी भावना** : प्रयोजन के उस व्यापार विशेष को जो प्रयोज्य पुरुष की प्रवृत्ति को उत्पन्न करने वाला होता है, शाब्दी भावना कहलाता है (पुरुषप्रवृत्त्यनुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः शाब्दी भावना)।

2) **आर्थीभावना** : स्वर्ग आदि प्रयोजन को लक्ष्य करके याग आदि क्रिया को अनुष्ठित करने का पुरुष में जो मानसिक व्यापार (कर्म) उत्पन्न होता है, आर्थी भावना कहलाता है (प्रयोजनेच्छाजनितक्रियाविषयव्यापार आर्थीभावना)।

घ) **वेद के विषय, विधि, मन्त्र आदि** : मीमांसा वेद को ‘अपौरुषेय वाक्य’ मानता है, वेद किसी पुरुष की रचना नहीं है। वह ईश्वर की भी रचना नहीं है। इसका कारण यह है कि प्राचीन मीमांसा ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं करती है। सम्पूर्ण वेद के पांच प्रभेद माने जाते हैं

1) **विधि** : (तत्राज्ञातार्थज्ञापको वेदभागो विधिः) विधिपरक आदेश वे आदेश हैं जो व्यक्ति को विशेष कर्म के लिए प्रेरित करते हैं, जिसके द्वारा विशेष फल प्राप्त हो सके। जैसे – स्वर्गकामो यजेत् अर्थात् जिन्हें स्वर्ग की कामना हो वे यज्ञ कर सकें, यह विधिपरक आदेश है।

**विधि के चार प्रकार –**

क) **उत्पत्ति विधि** : (कर्मस्वरूपमात्र बोधको विधिरुत्पत्तिविधिः) यह कर्म के स्वरूपमात्र को बतलाने वाली है।

ख) **विनियोग विधि** : (अंगप्रधानसम्बन्धबोधको विधिविनियोगविधिः) यह कर्म के अंग तथा प्रधान विषयों के सम्बन्ध का बोध कराने वाली विधि है।

ग) **प्रयोग विधि** : (प्रयोगप्राशुभावबोधको विधिः प्रयोगविधिः) यह प्रयोग की शीघ्रता की बोधक विधि है।

घ) **अधिकार विधि** : (कर्मजन्यफलस्वाम्यबोधको विधिरधिकारविधिः) यह कर्म से उत्पन्न फल के स्वामित्व की ओर संकेत करती है।

2) **मन्त्र** : (प्रयोगसमवेतार्थस्मारकाः मन्त्राः) यज्ञ के सम्पन्न होने में यज्ञ से सम्बन्धित विविध विषयों का स्मरण कराने में उपयोगी को मन्त्र कहते हैं। मन्त्र के द्वारा ही यज्ञ में देवताओं को आहुतियाँ दी जाती हैं।

- 3) **नामधेय** : (नामधेयानाम् च विधेयार्थपरिच्छेदकतयार्थवत्त्वम्) यज्ञों के नाम को नामधेय कहा जाता है, नाम अर्थात् संज्ञा, इसका तात्पर्य यज्ञों का व्यक्तिवाचक नाम है।
- 4) **निषेध** : (पुरुषस्य निवर्तकं वाक्यं निषेधः) जिस वाक्य द्वारा किसी पुरुष को क्रियानुष्ठान से निवृत्त किया जाता है, वह निषेध कहलाता है।
- 5) **अर्थवाद** : (प्राशस्त्यनिन्दान्यतरपरं वाक्यमर्थवादः) वे वाक्य जो किसी पदार्थ के सही गुणों का कथन करते हैं अर्थात् ये आदिष्ट वस्तुओं की प्रशंसा तथा निषिद्ध वस्तुओं की निन्दा करते हैं, अर्थवाद कहलाते हैं।

## वेदान्त दर्शन

### 2.4.4 वेदान्त दर्शन का परिचय

**वेदान्त दर्शन का इतिहास** : सम्पूर्ण विश्व वांगमय की सर्वप्रथम धरोहर के रूप में वेद माने जाते हैं, जो मनुष्य के जीवन को प्रशस्त करते हैं। वेद दो भागों में विभक्त है — मन्त्र तथा ब्राह्मण। देवताविशेष की स्तुति में प्रयुक्त होने वाले अर्थ स्मारक वाक्यों को मन्त्र तथा यज्ञानुष्ठानादि का विस्तारपूर्वक वर्णन जहाँ प्राप्त होता है वे ब्राह्मण ग्रन्थ कहलाते हैं। मन्त्र समुदाय को संहिता भी कहते हैं। संहिता एवम् ब्राह्मणात्मक वेद के अन्तिम भाग उपनिषद् हैं, जिनमें अध्यात्मविषयक गम्भीर विवेचन प्राप्त होता है। उपनिषद् को ही वेदान्त कहा गया है (वेदान्तो नामोपनिषद् प्रमाणम्, वेदान्तसार) क्योंकि वे वेद के अन्तिम भाग कहलाते हैं। उपनिषद् ग्रन्थों में वेदों के अर्थ सरलतम रूप में व्याख्यायित हैं।

उपनिषदों में जिस ब्रह्म को जगत् का कारण, आत्मा का आधार तथा मुक्तिदाता कहा गया है, उसी की और भी विस्तृत व्याख्या करना वेदान्त का मुख्य उद्देश्य है। मीमांसा जहाँ वेदों के कर्मकाण्ड की व्याख्या करता है वहाँ वेदान्त दर्शन उपनिषदों के ज्ञानकाण्ड की व्याख्या करता है। उपनिषद् वेदों के उत्तर-भाग है, इसलिए इसे उत्तरमीमांसा भी कहा जाता है।

### 2.4.5 वेदान्त दर्शन का साहित्य

- 1) **बादरायण** : समयान्तर में औपनिषद्-सिद्धान्तों में आपाततः विरोध प्रतीत होने के कारण उसका परिहार तथा एक-वाक्यता करने के उद्देश्य से महर्षि बादरायण ने 'ब्रह्मसूत्र' की रचना की। इसमें 4 अध्याय, 16 पाद, 191 अधिकरण तथा 555 सूत्र हैं जिनमें ब्रह्मविषयक विवेचन किया गया है।
- 2) **गौडपाद** : अद्वैत वेदान्त के प्रथम आचार्य के रूप में आचार्य गौडपाद को माना जाता है। इन्होंने माण्डूक्योपनिषद् पर एक कारिका ग्रन्थ की रचना की जिसका नाम 'माण्डूक्यकारिका' है।
- 3) **आचार्य शंकर** : अद्वैत वेदान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा है जो 'शारीरकभाष्य' नाम से विश्वविख्यात है। उनका कर्तृत्व अत्यन्त व्यापक है — दशोपनिषद्भाष्य, भगवद्गीताभाष्य, उपदेशसाहस्री, विवेकचूडामणि, दक्षिणामूर्तिस्तोत्र, सौन्दर्यलहरी इत्यादि उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।
- 4) **पद्मपाद** : शंकराचार्य के शिष्य पद्मपाद ने शारीरकभाष्य के चतुःसूत्रीपर्यन्त भाग पर 'पञ्चपादिका' नामक व्याख्या का प्रणयन किया है। यह ग्रन्थ अद्वैतवेदान्त में 'विवरणप्रस्थान' का प्रतिपादक माना जाता है।



- 5) **सुरेश्वराचार्य** : शंकराचार्य के शिष्य सुरेश्वर ने उनके उपनिषद्भाष्यों पर 'वार्तिक' ग्रन्थों का प्रणयन किया है जिनमें 'बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक' सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उनके द्वारा रचित 'नैष्कर्म्यसिद्धि' सम्भवतः शांकरभाष्य पर सर्वप्रथम स्वतन्त्र ग्रन्थ है।
- 6) **सर्वज्ञात्ममुनि** : 9वीं शताब्दी में सर्वज्ञात्ममुनि ने शारीरकभाष्य का संक्षेप में पद्यमय व्याख्यान लिखा जो 'संक्षेपशारीरक' नाम से प्रसिद्ध है।
- 7) **आनन्दगिरि** : आचार्य शंकर की परम्परा में आनन्दगिरि ने शांकरभाष्य पर 'न्यायनिर्णय' नामक टीका लिखी।
- 8) **वाचस्पति मिश्र** : ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य पर आचार्य वाचस्पति मिश्र ने 'भामती' टीका का प्रणयन किया जो इस कृति की सर्वाधिक प्रसिद्ध टीका है। भामती पर अमलानन्द ने 'कल्पतरु' नाम से टीका की है जिस पर अप्पयदीक्षित ने 'परिमल' नामक टीका की रचना की।
- 9) **प्रकाशात्मा यति** : इन्होंने पञ्चपादिका पर 'विवरण' नाम से ग्रन्थ का प्रणयन किया जिसे विवरण सम्प्रदाय का सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ माना जाता है। आचार्य ने शाब्दबोध प्रक्रिया पर 'शाब्दनिर्णय' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखा है।
- 10) **श्रीहर्ष** : श्रीहर्ष ने वेदान्त शास्त्रार्थ पर नव्यन्याय शैली में एक विद्वतापूर्ण ग्रन्थ 'खण्डनखण्डखाद्य' का प्रणयन किया है।
- 11) **विद्यारण्य** : इन्होंने वेदान्त पर 'पञ्चदशी' नामक एक उत्कृष्ट ग्रन्थ की रचना की, जो पद्यबद्ध रूप में है। 'विवरणप्रमेयसंग्रह', 'जीवनमुक्तिविवेक', 'वैयासिकन्यायमाला', 'दृग्दृश्यविवेक' आदि भी उनके अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।
- 12) **सदानन्दयोगीन्द्र** : आचार्य द्वारा विरचित 'वेदान्तसार' को अद्वैत वेदान्त का प्रवेशग्रन्थ माना जाता है।
- 13) **नृसिंहाश्रम** : इन्होंने 'अद्वैतदीपिका', 'अद्वैतपञ्चरत्न', 'वेदान्ततत्त्वविवेक' तथा 'भेदधिकार' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थों का प्रणयन किया है।
- 14) **अप्पय दीक्षित** : आचार्य द्वारा विरचित 'सिद्धान्तलेशसंग्रह' को अद्वैत वेदान्त का महाकोश माना जाता है। उनका एक अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वेदान्ततत्त्वकौस्तुभ' है।
- 15) **धर्मराजाध्वरीन्द्र** : आचार्य द्वारा विरचित 'वेदान्तपरिभाषा' में अद्वैत वेदान्त की प्रमाणमीमांसा का विस्तृत निरूपण किया गया है।
- 16) **मधुसूदन सरस्वती** : 17वीं शताब्दी के प्रसिद्ध अद्वैती आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने 'अद्वैतसिद्धि', 'अद्वैतरत्नरक्षण', 'प्रस्थानभेद', 'वेदान्तकल्पलतिका', 'गूढार्थदीपिका' की रचना की।

#### 2.4.6 अद्वैत वेदान्त के तत्त्वों का विचार

- क) **ब्रह्म** : शंकराचार्य के दर्शन में एकमात्र ब्रह्म ही परम सत्ता है जो अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान अद्वैत एवं देश-काल से परे है। यही मूल तत्त्व है। यह समस्त जगत् का आधार है। साथ ही यह सर्वोच्च ज्ञान भी है, इसके ज्ञान से ही हमारा अज्ञान नष्ट होता है। यह सच्चिदानन्द स्वरूप है।

'ब्रह्म' शब्द 'बृह' धातु से बना है, जिसका अर्थ है—'बढ़ना' या 'विस्तार को प्राप्त होना'। परमतत्त्व को इसलिए 'ब्रह्म' कहा गया है क्योंकि यह सर्वाधिक विस्तृत

अर्थात् सबसे महान् सत्ता है, 'बृहत्तमत्वाद् ब्रह्म'। ब्रह्म को ही अद्वैत कहा गया है, अद्वैत का अर्थ है— एक ही तत्त्व, जिसे परम सत्ता कहते हैं। उपनिषदों में अद्वैत के विषय में कहा गया है — 'न तु तद् द्वितीयम् अस्ति, 'नेह नानास्ति किञ्चन' आदि।

उपनिषदों में ब्रह्म के दो रूपों का वर्णन प्राप्त होता है — निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रह्म। अद्वैतवेदान्त में निर्गुण ब्रह्म की ही सत्ता स्वीकृत है। शंकर के अनुसार निर्गुण अर्थात् निराकार एवं निर्विशेष ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। यह अवर्णीय तथा अचिन्त्य सत्ता है। उपनिषदों में इसे ही 'नेति—नेति' कहा गया है।

**ख) जगत् :** समस्त नामरूप, क्रिया—कारक और उनके फल, जगत् के अन्तर्गत आते हैं (जगतो नामरूपक्रियाकारकफलजातस्य)। आचार्य शंकर ने यद्यपि जगत् के विषय में कई स्थानों पर उसे मिथ्या, मायिक, रस्सी में सर्प के समान भ्रामक कहा है, किन्तु उसे 'आकाश—कुसुम' के समान असत् नहीं कहा है।

**ग) त्रिविध सत्ता :** आचार्य शंकर के अनुसार वे केवल एक ही सत्ता स्वीकार करते हैं इसे वे अद्वैत ब्रह्म कहते हैं, परन्तु अनुभूत पदार्थों के अस्तित्व के लिए वे सत्ता के अन्य स्तर बताते हैं—

**प्रातिभासिक सत्ता :** ऐसी सत्ता जिसका हमें केवल आभास हो, जिसकी सत्यता पर हमें स्वयं अविश्वास हो, जैसे—स्वप्न के पदार्थों की सत्ता आदि।

**व्यावहारिक सत्ता :** जगत् के पदार्थों की सत्ता, जैसे—घर आदि।

**पारमार्थिक सत्ता :** पारमार्थिक सत्ता उसकी है जिसका तीनों कालों में बाध (नाश) नहीं होता अर्थात् जो अनश्वर, नित्य सत्ता है। ऐसी सत्ता केवल ब्रह्म की है।

**घ) माया :** आचार्य शंकर के दर्शन में ब्रह्म की रहस्यमयी शक्ति का नाम माया है, जिसके द्वारा ईश्वर जगत् का निर्माण करता है। माया का अर्थ है — जो जीव को मोहित करे अथवा जो जीव को मोहित कराये। माया की दो शक्तियाँ हैं — आवरण शक्ति एवं विक्षेप शक्ति। जो सत्य को ढंकता है अथवा छिपाता है उसे 'आवरण शक्ति' कहा गया है, इसी शक्ति के द्वारा माया ब्रह्म के स्वरूप को छिपा देती है, उस पर पर्दा डाल देती है। विक्षेप शक्ति का अर्थ है वास्तविक वस्तु के स्थान पर अवास्तविक को प्रस्तुत करना, जैसे — रस्सी—सर्प में रस्सी के स्थान पर सर्प की प्रतीति कराना।

**च) मोक्ष :** अद्वैतवेदान्त के अनुसार जीव एवं ब्रह्म अभिन्न हैं किन्तु जब जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न समझता है तो उसका यह अज्ञान ही बन्धन का मूलकारण है। जब कोई अधिकारी जिज्ञासु सांसारिक दुःखों से पीड़ित होकर गुरु के सान्निध्य में जाता है तो आचार्य उसे 'तत्त्वमसि' महावाक्य का उपदेश करता है। इस महावाक्य के अखण्डार्थ का बोध होने पर मुमुक्षु को जीव—ब्रह्मैक्य का ज्ञान हो जाता है। इसके उपरान्त मुमुक्षु 'अहं ब्रह्मास्मि' महावाक्य का श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करते हुए 'ब्रह्मसाक्षात्कार' कर लेता है। यही 'ब्रह्मसाक्षात्कार' मोक्ष की स्थिति है। आचार्य शंकर मोक्ष की परिभाषा करते हैं — 'स्वात्मन्यवस्थानम् मोक्षः' (केनोपनिषद् शांकरभाष्य) अर्थात् आत्मा की अपने स्वरूप में अवस्थिति ही मोक्ष है। अद्वैतमत में मोक्ष नित्य आनन्द की प्राप्ति है।

अद्वैतवेदान्त में मुक्ति के दो प्रकार बताए गए हैं – जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति। इनके अनुसार मोक्ष, आत्मा का परमात्मा से अभेद ज्ञान है और यह ज्ञान मनुष्य जब जीवितावस्था में ही प्राप्त कर लेता है, यही जीवनमुक्ति है। जीवनमुक्ति के प्रारम्भ कर्मों का जब क्षय हो जाता है तथा शरीर शान्त अवस्था को प्राप्त हो जाता है, यही विदेह मुक्ति है।

## 2.5 सारांश

न्यायभाष्यकार वात्स्यायन के अनुसार 'प्रमाणैः अर्थपरीक्षणं न्यायः' (न्यायभाष्य, 1.1.1) अर्थात् प्रमाणों की सहायता से वस्तु-तत्त्व का परीक्षण करने की प्रणाली ही न्याय कहलाती है। इस दर्शन को प्रमाणशास्त्र, हेतुविद्या, आन्वीक्षिकी विद्या के नाम से भी जाना जाता है। न्याय दर्शन को उसके प्रमाण शास्त्र के कारण अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। अन्य भारतीय दर्शन परम्पराओं को 'वादविधि की प्रक्रिया' का ख्यापन न्यायशास्त्र का महत्त्वपूर्ण अवदान है। न्याय दर्शन का इतिहास लगभग 2000 वर्षों में समाविष्ट है। इस विशाल दर्शन को विद्वानों ने तीन भागों में विभक्त किया है— प्राचीन न्याय, मध्य न्याय तथा नव्य-न्याय। न्याय दर्शन का भी मुख्य उद्देश्य दुःखों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना ही है। इस दर्शन के अनुसार मुक्ति तत्त्वज्ञान से प्राप्त होती है। तत्त्वज्ञान से मिथ्याज्ञान नष्ट होता है, जिससे दोष अर्थात् राग-द्वेष नष्ट होते हैं तथा मुक्ति मिलती है। महर्षि गौतमप्रणीत न्यायसूत्र, वात्स्यायनकृत न्यायभाष्य, उद्योतकरकृत न्यायवार्तिक, वाचस्पतिकृत न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका, जयन्तभट्टकृत न्यायमंजरी, उदयनकृत तात्पर्यपरिशुद्धि तथा न्यायकुसुमांजलि, गंगेशोपाध्यायकृत तत्त्वचिन्तामणि, भासर्वज्ञकृत न्यायसार, वरदराजकृत तार्किकरक्षा तथा केशवमिश्रकृत तर्कभाषा न्यायशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ हैं। 'प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्क-निर्णयवादजल्पवितंडाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानानिःश्रेयसाधिगमः' (न्यायसूत्र, 1.1.1) के अनुसार प्रमाणादि षोडश पदार्थों के तत्त्वज्ञान से अपवर्ग(मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

वैशेषिक दर्शन, न्याय-दर्शन के समानतन्त्र के रूप में विख्यात है। विशेष को एक पदार्थ मानने के कारण इसे वैशेषिक कहा जाता है। अन्य भारतीय दर्शनों के समान इस दर्शन का उद्देश्य भी मोक्ष की प्राप्ति है। वैशेषिक के अनुसार धर्म के ज्ञान से जीवात्मा मोक्ष की प्राप्ति करता है। महर्षि कणाद प्रणीत वैशेषिक सूत्र, प्रशस्तपाद का, 'पदार्थधर्मसङ्ग्रह' व्योमशिवकृत व्योमवती, श्रीधर की 'न्यायकन्दली', उदयनकृत 'किरणावलि', श्रीवत्साचार्यकृत लीलावती, शंकरमिश्र की 'उपस्कारवृत्ति' तथा 'कणादरहस्य'; वरदराज की 'तार्किकरक्षा, शिवादित्य का ग्रन्थ 'सप्तपदार्थी', वल्लभाचार्य की 'न्यायलीलावती', अन्नभट्टकृत 'तर्कसंग्रह', विश्वनाथ पञ्चाननकृत 'भाषापरिच्छेद' वैशेषिकदर्शन के प्रमुख ग्रन्थ हैं। इस दर्शन में पदार्थों को सात मुख्य कोटियों में रखा गया है, इनके सात प्रकार बताये गये हैं – द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव। द्रव्यादि सप्त पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्य ज्ञान से मुक्ति की उपलब्धि होती है।

भारतीय चिन्तन परम्परा में सांख्य दर्शन को प्राचीनतम दर्शन की संज्ञा दी जाती है। इस दर्शन में प्रकृति एवं पुरुष के सम्यक् ज्ञान से कैवल्य का मार्ग प्रतिपादित किया गया है, इसलिए इसे सांख्य कहा जाता है। सांख्यदर्शन के सिद्धान्त बीजरूप में श्वेताश्वतरोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, कठोपनिषद्, महाभारत, भगवद्गीता, मनुस्मृति,

अर्थशास्त्र, चरकसंहिता, वायुपुराण आदि में उपलब्ध होते हैं तथापि एक स्वतन्त्र दर्शन के रूप में इसका प्रवर्तन कपिल मुनि ने किया है। कपिल मुनि द्वारा प्रणीत 'सांख्यसूत्र', ईश्वरकृष्ण द्वारा रचित सांख्यकारिका, अनिरुद्धकृत 'अनिरुद्धवृत्ति', विज्ञानभिक्षुप्रणीत 'सांख्यप्रवचनभाष्य', महादेव वेदान्तिनकृत 'सांख्यसूत्रवृत्तिसार', भावागणेशकृत 'तत्त्वयाथार्थयदीपन', क्षेमेन्द्रकृत 'सांख्यतत्त्वविवेचन', वाचस्पतिमिश्रप्रणीत सांख्यतत्त्वकौमुदी, विज्ञानभिक्षु द्वारा रचित 'सांख्यसार' श्रीधर विरचित 'सांख्यदीपिका'; स्वयंप्रकाशयति रचित 'गुणत्रयविवेक' तथा कविराजयति कृत 'सांख्यतत्त्वप्रदीप' इस दर्शन के प्रमुख ग्रन्थ हैं। सांख्य द्वैतवादी एवं वस्तुवादी दर्शन है। सांख्य के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष दो मूल तत्त्व हैं। इन्हीं दो तत्त्वों के संयोग से 23 अन्य तत्त्वों की उत्पत्ति होती है जिससे सृष्टि का निर्माण होता है। इन्हीं दोनों तत्त्वों का विवेकज्ञान हो जाने पर प्राणी दुःखत्रय से निवृत्त होकर कैवल्य को प्राप्त कर लेता है।

भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा में योगदर्शन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय परम्परा के अनुसार हिरण्यगर्भ को योगदर्शन का आदि उपदेष्टा स्वीकार किया जाता है। वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, कल्पसूत्रों, महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों में योग का वर्णन प्राप्त होता है। योगशास्त्र के इतिहास में महर्षि पतंजलि का अद्वितीय स्थान है जिन्होंने दूसरी शताब्दी ई.पू. में 'योगसूत्र' की रचना द्वारा वर्तमान में प्रचलित योगदर्शन की प्राणप्रतिष्ठा की है। सांख्य दर्शन में स्वीकृत 25 तत्त्वों के साथ ईश्वर को मिलाकर योग दर्शन में कुल 26 तत्त्व स्वीकार किये जाते हैं। महर्षि पतंजलिप्रणीत 'योगसूत्र', व्यासविरचित 'योगभाष्य', वाचस्पति मिश्रप्रणीत 'तत्त्ववैशारदी', भोजराजकृत 'राजमार्तण्डवृत्ति', विज्ञानभिक्षुप्रणीत 'योगवार्तिक' इस दर्शन की प्रमुख कृतियाँ हैं। 'योगः चित्तवृत्तिनिरोधः' अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध (संयमन) ही योग है। चित्तवृत्ति निरोध का प्रधान उपाय है — अभ्यास एवं वैराग्य। योग के आठ अंग हैं — 'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि'। योगदर्शन के अनुसार पुरुषार्थ को पूर्णकर चुके सत्त्वादि गुणों का प्रतिप्रसव (प्रकृति में लीन हो जाना) कैवल्य है अथवा पुरुष (चेतन आत्मतत्त्व) का अपने स्वरूप (असंग, उदासीन, केवली, द्रष्टा आदि) में प्रतिष्ठित हो जाना कैवल्य है।

मनीषियों द्वारा आस्तिक दर्शनों में मीमांसा दर्शन को अग्रणी दर्शन के रूप में स्वीकार किया गया है, क्योंकि यह पूर्णतः वेदों पर आधारित है। धर्म (यज्ञ-परम्परा) की रक्षा करने के लिए उसके प्रमाण, उसका स्वरूप, उसका साधन और अन्त में फल बतला कर अर्थात् श्रेय तथा प्रेय दोनों की प्राप्ति कराते हुए समाज को सुव्यवस्थित रखना ही मीमांसा दर्शन का प्रमुख उद्देश्य है। महर्षि जैमिनिप्रणीत 'मीमांसासूत्र', शबरस्वामी का 'शाबरभाष्य', कुमारिलभट्टकृत 'श्लोकवार्तिक', तन्त्रवार्तिक तथा टुष्टीका, प्रभाकरकृत बृहती एवं लघ्वी, मंडनमिश्र का 'भावनाविवेक' एवं 'मीमांसा अनुक्रमणी', पार्थसारथि मिश्रकृत शास्त्रदीपिका, तन्त्ररत्न और न्यायरत्नमाला, शालिकनाथमिश्र की 'ऋजुविमला', प्रकरणपंचिका एवं परिशिष्ट, आपदेव रचित 'मीमांसान्यायप्रकाश' तथा लौगाक्षिभास्करकृत अर्थसंग्रह मीमांसा दर्शन के प्रमुख ग्रन्थ हैं। मीमांसा का प्रधान विषय धर्म है, धर्म की व्याख्या करना ही इस दर्शन का प्रयोजन बताया गया है। याग आदि कर्म ही धर्म हैं (यागादिरेव धर्मः)। 'वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्मः', अर्थात् जो वेद द्वारा प्रतिपादित हो, प्रयोजनयुक्त हो तथा अर्थवान् हो उसे धर्म कहते हैं।

सम्पूर्ण विश्व वाङ्मय की सर्वप्रथम धरोहर के रूप में वेद माने जाते हैं, जो मनुष्य के जीवन को प्रशस्त करते हैं। संहिता एवम् ब्राह्मणात्मक वेद के अन्तिम भाग उपनिषद् हैं, जिनमें अध्यात्मविषयक गम्भीर विवेचन प्राप्त होता है। उपनिषद् को ही वेदान्त कहा

गया है (वेदान्तो नामोपनिषद् प्रमाणम्, वेदान्तसार) क्योंकि वे वेद के अन्तिम भाग कहलाते हैं। बादरायणप्रणीत 'ब्रह्मसूत्र', गौडपादविरचित 'माण्डूक्यकारिका', शंकराचार्यप्रणीत 'ब्रह्मसूत्रशास्त्रीरकभाष्य', उपनिषद्भाष्य, भगवद्गीताभाष्य, उपदेशसाहस्री तथा विवेकचूडामणि', पद्मपाद की पञ्चपादिका, सुरेश्वरकृत नैष्कर्म्यसिद्धि, वाचस्पतिमिश्रप्रणीत भामती, प्रकाशात्माकृत विवरण, श्रीहर्ष का खण्डनखण्डखाद्य, अप्पयदीक्षित का सिद्धान्तलेशसंग्रह, धर्मराजाध्वरीन्द्र की वेदान्तपरिभाषा, सदानन्दकृत वेदान्तसार तथा मधुसूदन सरस्वतीकृत अद्वैतसिद्धि इस दर्शन के प्रमुख ग्रन्थ हैं। दर्शन में एकमात्र ब्रह्म ही परम सत्ता है जो अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान अद्वैत एवं देश-काल से परे है। यही मूल तत्त्व है। यह समस्त जगत् का आधार है। साथ ही यह सर्वोच्च ज्ञान भी है, इसके ज्ञान से ही हमारा अज्ञान नष्ट होता है। यह सच्चिदानन्द स्वरूप है। अद्वैतवेदान्त के अनुसार जीव एवं ब्रह्म अभिन्न हैं किन्तु जब जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न समझता है तो उसका यह अज्ञान ही बन्धन का मूलकारण है। जब कोई अधिकारी जिज्ञासु सांसारिकदुःखों से पीड़ित होकर गुरु के सान्निध्य में जाता है तो आचार्य उसे 'तत्त्वमसि' महावाक्य का उपदेश करता है। इस महावाक्य के अखण्डार्थ का बोध होने पर मुमुक्षु को जीव-ब्रह्मैक्य का ज्ञान हो जाता है। इसके उपरान्त मुमुक्षु 'अहं ब्रह्मास्मि' महावाक्य का श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करते हुए 'ब्रह्मसाक्षात्कार' कर लेता है। यही 'ब्रह्मसाक्षात्कार' मोक्ष की स्थिति है।

## 2.6 शब्दावली

दर्शन, आस्तिक, न्याय, आन्वीक्षिकी, प्रमाण, प्रमेय, तत्त्वज्ञान, निःश्रेयस, वैशेषिक, धर्म, सामान्य, विशेष, सांख्य, प्रकृति, पुरुष, सर्ग, सूक्ष्मशरीर, कैवल्य, योग, चित्तवृत्ति, सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात, ईश्वर, मीमांसा, भावना, विधि, अपूर्व, वेदान्त, उपनिषद्, माया, मोक्ष।

## 2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अद्वैतवेदान्तः, इतिहास तथा सिद्धान्त, राममूर्ति शर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972।
- भारतीय दर्शन, एस. राधाकृष्णन (अनु.) नन्दकिशोर गोभिल, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 2010।
- भारतीय दर्शन: आलोचन एवं अनुशीलन, चन्द्रधर शर्मा, पुस्तक भण्डार, पटना, 1969।
- भारतीय दर्शन का इतिहास, एस. एन. दासगुप्ता, (अनु.) कलानाथ शास्त्री एवं सुधीर कुमार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2003 (तृतीय संस्करण)।
- संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास (दर्शन खण्ड), (स.) बलदेव उपाध्याय, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखऊ, 1993।
- भारतीय दर्शन बृहत्कोष, बच्चूलाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2004
- History of Indian Logic, S.C.Vidyabhushan, MLBD, Delhi, 1971.

---

## 2.8 अभ्यास प्रश्न

---

- 1) न्याय-वैशेषिक दर्शन का परिचय दीजिए।
- 2) न्याय-वैशेषिक दर्शन के साहित्य का विवेचन कीजिए।
- 3) न्याय-वैशेषिक दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का निरूपण कीजिए।
- 4) न्यायदर्शन के अनुसार ईश्वर के स्वरूप का विशद विवेचन कीजिए।
- 5) सांख्य-योग दर्शन का परिचय दीजिए।
- 6) सांख्य-योग दर्शन के साहित्य का विवेचन कीजिए।
- 7) सांख्य-योग दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का निरूपण कीजिए।
- 8) मीमांसा-वेदान्त दर्शन का परिचय दीजिए।
- 9) मीमांसा-वेदान्त दर्शन के साहित्य का विवेचन कीजिए।
- 10) मीमांसा-वेदान्त दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का निरूपण कीजिए।



ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY

---

## इकाई 3 नास्तिक दर्शन – चार्वाक, जैन, बौद्ध

---

### इकाई की रूपरेखा

- 3.0 उद्देश्य
- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 चार्वाक दर्शन
  - 3.2.1 चार्वाक का परिचय
  - 3.2.2 चार्वाक दर्शन का साहित्य
  - 3.2.3 चार्वाक दर्शन के तत्वों पर विचार
- 3.3 जैन दर्शन
  - 3.3.1 जैन दर्शन का परिचय
  - 3.3.2 जैन दर्शन का साहित्य
  - 3.3.3 जैन दर्शन के तत्वों का विचार
  - 3.3.4 जैन दर्शन का प्रमाण विचार
- 3.4 बौद्ध दर्शन
  - 3.4.1 बौद्ध दर्शन का परिचय
  - 3.4.2 बौद्ध दर्शन का साहित्य
  - 3.4.3 बौद्ध दर्शन के संप्रदाय
  - 3.4.4 बौद्ध दर्शन में प्रमाण
  - 3.4.5 बौद्ध दर्शन में आत्मा विचार
- 3.5 सारांश
- 3.6 शब्दावली
- 3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

---

### 3.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- भारतीय दर्शन के अंतर्गत आने वाले नास्तिक संप्रदायों का विस्तृत परिचय प्राप्त करेंगे।
- नास्तिक संप्रदाय में आने वाले चार्वाक, जैन और बौद्ध दर्शनों पर चर्चा करेंगे।
- नास्तिक संप्रदायों के साहित्य एवं विभिन्न तत्वों से अवगत होंगे; तथा
- इन संप्रदायों का अध्ययन कर उनकी आचार मीमांसा, ज्ञान मीमांसा इत्यादि का विधिवत अनुशीलन कर उसकी विवेचना करने में समर्थ हो सकेंगे।

---

### 3.1 प्रस्तावना

---

भारतीय विचारधारा में दर्शन का जीवन के साथ अनिवार्य संबंध है। स्वरूप और पद्धति की दृष्टि से भारतीय विचारधारा में दो परंपराएं दिखाई देती हैं, आस्तिक और

नास्तिक। भारतीय परंपरा में आस्तिक और नास्तिक पदों को परिभाषित करने का आधार सर्वसम्मति से वेद प्रमाण की स्वीकृति और अस्वीकृति है। नास्तिक पद को यहां वेदों की निंदा करने वाले के रूप में परिभाषित किया जाता है। प्राचीन भारतीय दार्शनिक साहित्य में आस्तिक एवं नास्तिक पदों का एक अन्य अर्थ भी प्राप्त होता है। परलोक में विश्वास करने वाले दर्शन को आस्तिक और परलोक में विश्वास न करने वाले दर्शन को नास्तिक दर्शन कहते हैं। केवल इहलोक या दृश्य जगत् की सत्ता को स्वीकार करने के कारण नास्तिक दर्शन को लोकायत दर्शन भी कहा जाता है। आस्तिक, नास्तिक पदों का अर्थ स्वीकार करने पर केवल चार्वाक दर्शन ही नास्तिक सिद्ध होता है क्योंकि इसमें परलोक की सत्ता को अस्वीकार करते हुए केवल इहलोक की सत्ता में विश्वास किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी दर्शनों—सांख्य, योग न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदांत जैन एवं बौद्ध को आस्तिक परंपरा में रखते हैं क्योंकि इसमें परलोक में विश्वास किया जाता है। आधुनिक भारतीय साहित्य में आस्तिक और नास्तिक पदों का एक और अर्थ प्राप्त होता है जिसमें ईश्वर की सत्ता में विश्वास के आधार पर आस्तिक और नास्तिक पदों की व्याख्या की जाती है।

यहां उल्लेखनीय है कि यद्यपि आस्तिक और नास्तिक पदों के अनेक अर्थ किए गए हैं किंतु इनमें से वेदों के अस्तित्व में विश्वास के आधार पर जो परिभाषा आस्तिक और नास्तिक दर्शनों की की जाती है वही सर्वमान्य है और सर्वाधिक प्रचलित है। चार्वाक, जैन एवं बौद्ध दर्शनों को वेद विरोधी होने के कारण नास्तिक दर्शन कहा गया है जबकि वैदिक परंपरा के पोषण के कारण सांख्य योग, न्याय वैशेषिक एवं वेदांत दर्शन कहा गया है।

## 3.2 चार्वाक दर्शन

### 3.2.1 चार्वाक दर्शन का परिचय

भारतीय विचारधारा के संदर्भ में भौतिकवाद या जड़वाद का उल्लेख होते ही चार्वाक दर्शन का नाम सर्वप्रथम आता है। भौतिकवादी विचारधारा वह है जिसमें पदार्थ या जड़ को ही मूल तत्व माना जाता है तथा जड़ पदार्थ से ही आत्मा, मन तथा अन्य सभी सांसारिक वस्तुओं की उत्पत्ति मानी जाती है। यद्यपि भौतिकवादी मान्यताओं का उल्लेख वैदिक काल से ही प्राप्त होता है तथापि भारतीय परंपरा में इसे तार्किक आधार पर व्यवस्थित करने का श्रेय चार्वाक दर्शन को ही जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार चार्वाक शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'चर्व' धातु से हुई है, इसका अर्थ है चबाना या भोजन करना क्योंकि चार्वाक मत में खाने—पीने और मौज उड़ाने को ही व्यक्ति का परम पुरुषार्थ माना जाता है अतः इसे चार्वाक कहा जाता है। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार जो किस्मत के अनुसार मधुर वाणी का प्रयोग करते थे अतः इस विचारधारा को चार्वाक कहा गया इस विचारधारा को लोकायत दर्शन भी कहते हैं क्योंकि इसमें इस प्रत्यक्ष लोक या जगत् की ही एकमात्र सत्ता को स्वीकार करके परलोक का निषेध किया जाता है अथवा यह जन सामान्य की रुचि का प्रतिनिधित्व करता है।

परंपरा से ऐसा स्वीकार किया जाता है कि देवताओं के गुरु बृहस्पति इसके प्रवर्तक थे और उन्होंने इस दर्शन का प्रसार दानवों के बीच उनके विनाश के लिए किया था। वर्तमान में इस विचारधारा का प्रतिपादन करने वाला कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं प्राप्त होता है। शास्त्रीय प्रमाण के रूप में जो बृहस्पति के सूत्र कहे जाते रहे हैं वे अब विलुप्त हो



गए हैं। सर्वदर्शन संग्रह के प्रथम अध्याय में इस संप्रदाय की शिक्षा का सार प्राप्त होता है।

भारतीय विचारधारा में चार्वाक कभी भी सम्माननीय नहीं रहा बल्कि उपहास का विषय रहा है। चार्वाक दर्शन द्वारा वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं किया गया है यह एक महत्वपूर्ण कारण रहा होगा कि चार्वाक आस्तिक दर्शनों में विशेषरूप से उपहास को प्राप्त हुआ। जनसामान्य के बीच सम्मान न प्राप्त कर पाने का विशेष हेतु इसका दुर्बल नैतिक पक्ष रहा है जिसने सामाजिक व्यवस्था और नैतिक उत्तरदायित्व की बुनियाद को बहुत गहरे से प्रभावित किया। इसने अध्यात्म और परंपरा के निषेध के साथ मानव जीवन के आधारभूत मूल्यों का निषेध किया। मानव जीवन की आधारभूत मूल्यों की स्वीकृति ने वेद के विरोध एवं ईश्वर के निषेध के बावजूद जैन एवं बौद्ध धर्म की लोकप्रियता को बनाए रखा था लेकिन चार्वाक द्वारा मानव मूल्यों का निषेध इसके असम्मान का विशेष कारण बना।

### 3.2.2 चार्वाक दर्शन का साहित्य

जयराशि भट्ट का तत्वोपप्लवसिंह नामक ग्रंथ महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ को छोड़कर इस मत का कोई और मौलिक ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता है।

कृष्णपति मिश्र ने प्रबोधचंद्रोदय नामक अपने नाटक के द्वितीय अंक में चार्वाक सिद्धांतों का वर्णन कुछ इस प्रकार से किया था। लोकायत एकमात्र शास्त्र है; पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चार महाभूत हैं; इंद्रिय सुखोपभोग ही मानव जीवन का लक्ष्य है परलोक नहीं है; मृत्यु ही मोक्ष है; तथाकथित 'आत्मा' जड़त्व का ही विकार है।

माधवाचार्य के 'सर्वदर्शनसंग्रह' के प्रथम अध्याय में चार्वाक दर्शन का विवरण दिया गया है जिसमें उपर्युक्त सिद्धांतों के प्रति वेदों की निंदा कर्मकांड के निंदा यागादि, श्राद्ध आदि की व्यर्थता आदि भी चार्वाक मत के अंतर्गत वर्णित किए गए हैं। बृहस्पति के कुछ सूत्र जो विविध दार्शनिक ग्रंथों में उद्धृत हैं, वे इस प्रकार हैं—

1. पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ही तत्व है।
2. इनके समुदाय से शरीर, इंद्रिय और विषय बनते हैं।
3. जिस प्रकार अंगूर आदि के रस में विकार उत्पन्न करके मदिरा बनाई जाती है—पहले उसमें मादक शक्ति नहीं होती, बाद में उत्पन्न होती है; उसी प्रकार जड़ तत्वों से उनके विविध अनुपातों के मिश्रण से जीवित शरीर में चैतन्य उत्पन्न होता है।
4. काम ही एकमात्र पुरुषार्थ है।
5. मरण ही मोक्ष है।

### 3.2.3 चार्वाक दर्शन के तत्वों पर विचार

विश्व के विभिन्न तत्वों के संदर्भ में चार्वाक का मत उनके प्रमाण संबंधी विचारों पर अवलंबित है क्योंकि वे प्रत्यक्ष को ही एकमात्र प्रमाण मानते हैं। इसलिए वे केवल उन्हीं वस्तुओं का अस्तित्व मान सकते हैं जिनका कि प्रत्यक्ष हो सकता है। तात्पर्य यह है कि ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, अदृष्ट आदि विचारों को वह नहीं मान सकते क्योंकि उसका प्रत्यक्ष नहीं होता है। केवल द्रव्यों का ही प्रत्यक्ष होता है इसलिए केवल उन्हीं को ही स्वीकार कर सकते हैं। एक प्रकार से चार्वाक जड़वाद का प्रतिपादन करता है। इनके अनुसार जड़ ही एकमात्र तत्व है।

### 1) चार्वाक के अनुसार संसार चार भूतों से निर्मित है

अन्य भारतीय दर्शनिक मतों में पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल, आकाश इन पंचभूतों को जगत् का कारण माना गया है किंतु चार्वाक आकाश के अस्तित्व को नहीं मानते। क्योंकि इसका ज्ञान अनुमान के द्वारा होता है प्रत्यक्ष के द्वारा नहीं होता है। इन चार तत्वों से मात्र निर्जीव ही नहीं बल्कि सजीव तत्वों की भी उत्पत्ति हुई है। प्राणियों का जन्म तत्वों के सहयोग से होता है और देहांत के बाद वे फिर भूतों में ही विलीन हो जाते हैं।

### 2) उत्पत्ति विचार

पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल इन चार तत्वों के विविध अनुपात में सम्मिश्रण होने से बाह्य जगत्, भौतिक शरीर, इंद्रियाँ आदि उत्पन्न होते हैं। चैतन्य भी भौतिक तत्वों के सम्मिश्रण से जीवित शरीर में उत्पन्न होता है। अतः जीवित शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं है। जड़ तत्वों के संयोग से किसी वस्तु का निर्माण होता है। यह संभव है कि तत्वों में यदि किसी गुण विषय का अभाव भी रहे तो उसकी उत्पत्ति उस निर्मित वस्तु में हो सकती है। पान, चूना, सुपारी में लाल रंग का अभाव है किंतु इनको जब एक साथ चलाया जाता है उसमें लाल रंग की उत्पत्ति हो जाती है। एक ही वस्तु को भिन्न भिन्न परिस्थितियों में रखने से भी उस में नए-नए गुणों का आविर्भाव होता है। गुड़ में मादकता का अभाव है किंतु गुड़ सड़ जाने पर वह मादक हो जाता है। इसी प्रकार जड़ तत्वों का सम्मिश्रण यदि एक विशेष ढंग से हो तो शरीर की उत्पत्ति होती है और उसमें एक नये गुण चैतन्य का आविर्भाव होता है।

### 3) आत्म विचार

जब तक शरीर जीवित रहता है तब तक उसमें चैतन्य का आविर्भाव होता है और जब शरीर जीवित नहीं रहता तब चैतन्य भी जीवित नहीं रहता। पुनः व्यक्ति अपने शरीर को ही आत्मा मानता है, जब वह कहता है कि मैं स्थूल हूं, मैं कृश हूं, मैं दुःखी हूं आदि। 'मैं' और 'शरीर' का तादात्म्य यहां पर प्रत्यक्षतः सिद्ध है। चार्वाक स्वीकार करते हैं कि चैतन्य का ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा होता है किंतु वह यह नहीं मानते कि चैतन्य किसी भौतिक तत्व अर्थात् आत्मा का गुण है। आत्मा का तो कभी प्रत्यक्ष नहीं होता। जड़ तत्वों से बने जो हमारे शरीर हैं केवल उन्हीं का प्रत्यक्ष होता है। चैतन्य हमारे शरीर के अंतर्गत हैं इसलिए चैतन्य को शरीर का ही गुण मानना चाहिए। चेतन शरीर को ही आत्मा कहना चाहिए, 'चैतन्यविशिष्टो देहः एवं आत्मा'। आत्मा एवं शरीर के तादात्म्य का ज्ञान दैनिक अनुभवों से भी हमें प्राप्त हो जाता है।

भले ही चैतन्य के विविध भौतिक घटकों में से किसी में भी चैतन्य नहीं है किंतु जब उनका एक विशेष अनुपात में जीवित शरीर में सम्मिश्रण होता है तो उनसे चैतन्य गुण उत्पन्न हो जाता है। जिस प्रकार मदिरा के विभिन्न घटकों में से किसी में भी मादकता नहीं है किंतु जब उनमें विशेष प्रक्रिया से विकार उत्पन्न किया जाता है तो मदिरा में मादकता नाम गुण उत्पन्न हो जाता है।

चार्वाक के भूतचैतन्यवाद का अन्य दार्शनिकों ने जमकर खंडन किया है। यदि चैतन्य का अर्थ स्वचैतन्य से है, जैसाकि मानवों में है तो इसका तादात्म्य जीवित शरीर से नहीं किया जा सकती। पशुओं में जीवित शरीर तो है किंतु

उनमें विवेक नहीं है। चार्वाक का उत्तर है कि ऐसा उत्कृष्ट सम्मिश्रण केवल मानव शरीर में ही मिलता है और उनमें भी विभिन्न अनुपातों में, उनमें भी स्वचैतन्य की अभिव्यक्ति का अलग-अलग तारतम्य होता है। किंतु यह चार्वाक की कल्पना मात्र है। यदि चैतन्य जीवित शरीर का गुण है तो दोनों का पार्थक्य नहीं होना चाहिए, जैसा कि चार्वाक मानता है। किंतु मूर्छा, बेहोशी, गाढ़ निद्रा आदि में जीवित शरीर में चैतन्य की अभिव्यक्ति नहीं होती। दूसरी ओर जब व्यक्ति स्वप्न देखता है और स्वप्न में अपने शरीर को विविध कार्य करते देखता है तो उसका स्वप्न शरीर जीवित भौतिक शरीर नहीं है किंतु स्वप्न दृष्टा के चैतन्य से सृष्ट है। जागने पर वह व्यक्ति अपने स्वप्न शरीर को मिथ्या जान लेता है किंतु सपना चैतन्य को जागृत में भी सत्य जानता है। स्वप्न दृष्ट पदार्थों का जागृत में बात हो जाता है किंतु चेतन स्वप्न द्रष्टा ने स्वप्न में पदार्थों का विषय रूप में अनुभव किया इस अनुभव का जागृत में भी बात नहीं होता। सच में किसी विषय का अनुभव नहीं होता किंतु अविद्या से आवृत आत्मा की सत्ता बनी रहती है इसलिए जागने पर भी व्यक्ति निद्रा पूर्व के अनुभवों से जुड़ा रहता है इनसे सिद्ध है कि चैतन्य की सत्ता जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति तीनों की अवस्था में बनी रहती है। चेतन का स्वतःसिद्ध और स्व प्रकाश है और वह कभी विषय नहीं बन सकता।

जीव प्रमाता, भोक्ता और कर्ता है। शरीर प्रमेय, भोग्य और कार्य है। पुनश्च यह तथ्य कि जीवित शरीर की बिना चैतन्य की अनुभूति नहीं होती, यह सिद्ध नहीं करता कि जीवित शरीर चैतन्य का कारण है। यदि चैतन्य शरीर का गुण है तो सब लोगों को उसका प्रत्यक्ष होना चाहिए, किंतु चैतन्य तो नितांत व्यक्तिगत है। यह अपने ही चैतन्य का अनुभव कर सकता है अन्य व्यक्ति के चैतन्य का नहीं और यदि हम मान भी लें कि मृत्यु के बाद आत्मा की सत्ता बुद्धि द्वारा सिद्ध नहीं की जा सकती तो यह भी उतना ही सत्य है कि मरणोपरांत आत्मा की सत्ता का अभाव भी बुद्धि द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता अतः चार्वाक का भूत चैतन्य निम्न कोटि का विचार माना जाता है।

#### 4) चार्वाक दर्शन का प्रमाण विचार

चार्वाक दर्शन के अनुसार यथार्थ ज्ञान का एक ही प्रामाणिक साधन है और वह है प्रत्यक्ष (प्रत्यक्षमेकं प्रमाणम्)। चार्वाक प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य परमाणु की वैधता को स्वीकार नहीं करते हैं। प्रत्यक्ष के संदर्भ में चार्वाकों की कोई परिभाषा भी प्राप्त नहीं होती है सामान्यतः अन्यान्य भारतीय दार्शनिकों की भांति वे यह स्वीकार करते हैं कि ज्ञानेंद्रिय एवं विषय के संपर्क से उत्पन्न ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। इसका प्रमाण भी प्रत्यक्ष है। क्योंकि हमारी ज्ञानेंद्रियाँ पांच हैं (आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा) अतः इनसे क्रमशः रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्श का ज्ञान होता है।

अनुमान प्रमाण नहीं है – अनुमान ज्ञान का एक प्रमुख साधन है। जिसमें पक्ष में हेतु के प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर उसमें अदृश्य साध्य का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। जैसे, किसी स्थान-विशेष में उठते हुए धुएँ को देखकर वहाँ अदृष्ट अग्नि का ज्ञान अनुमति प्रमा है और इस प्रमा का असाधारण साधन अनुमान प्रमाण है। सामान्यतः भारतीय परंपरा में अनुमान (परार्थानुमान) का निम्नलिखित स्वरूप है –

प्रतिज्ञा-पर्वत पर आग है।

हेतु— क्योंकि वहाँ आग है।

उदाहरण—जहाँजहाँ धुआँ होता है वहाँ आग होती है। जैसे— रसोई घर में।

उपनय— पर्वत पर धुआँ है।

निगमन— अतः पर्वत पर आग है।

उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त अनुमान में पर्वत पर आग के ज्ञान में दो कारक हैं। प्रथम, पर्वत पर धुएँ का प्रत्यक्ष ज्ञान (पक्षधर्मता) और द्वितीय, धुएँ और आग का नियत साहचर्य संबंध का ज्ञान जिसे व्याप्ति कहते हैं। वस्तुतः व्याप्ति अनुमान का प्रमाण है। चार्वाक के अतिरिक्त भारतीय दर्शन के सभी संप्रदाय अनुमान प्रमाण की वैधता को स्वीकार करते हैं।

चार्वाक दार्शनिक अनुमान प्रमाण का खंडन करने के लिए उसके आधारभूत सिद्धांत व्याप्ति को अवैध सिद्ध करने का प्रयास करते हैं क्योंकि हेतु और साध्य का व्याप्य-व्यापक भाव अनुमान का आधार है। उनका कथन है कि धूम और अग्नि के बीच व्याप्य-व्यापक भाव और तत्सदृश अन्य व्याप्तियों की कल्पना निराधार एवं तर्कविरुद्ध है क्योंकि हमारे पास इस प्रकार के सर्वव्यापी तर्कवाक्यों को प्राप्त करने का कोई वैध साधन नहीं है। चूंकि व्याप्ति हेतु और साध्य का व्याप्य-व्यापक संबंध है, अतः चार्वाकों की मान्यता है कि अनुमान तभी निश्चयात्मक और निर्दोष हो सकता है जब व्याप्ति निर्दोष एवं वास्तविक हो। किंतु इसके विषय में निश्चित रूप से ऐसा नहीं कहा जा सकता कि जहाँ धुआँ होता है वहाँ आग होती है। हम इस व्याप्ति ज्ञान को केवल तभी निश्चायक एवं प्रामाणिक मान सकते हैं जब हम प्रत्यक्ष से धूमयुक्त सभी पदार्थों को अग्नियुक्त जान सकें। किंतु यह बिल्कुल असंभव है कि हम खुद एवं भविष्य के सभी पदार्थों को अग्नियुक्त देख सकें। प्रत्यक्ष का संबंध केवल वर्तमान से है और हम वर्तमान समय में भी सभी धूमवान पदार्थों को अग्नियुक्त नहीं जान सकते। यदि इस प्रकार की व्याप्ति आज सत्य भी हो तो भविष्य में भी सत्य होगी इसका कोई प्रमाण नहीं है। इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुभव का क्षेत्र अत्यंत सीमित है; परिणामस्वरूप वह हमें किसी भी सामान्य संबंध (व्याप्ति) का ज्ञान नहीं करा सकता।

### 3.3 जैन दर्शन

#### 3.3.1 जैन दर्शन का परिचय

जैन मत में कुल 24 तीर्थंकर हुए। बहुत प्राचीन काल से ही तीर्थंकरों की एक लंबी परंपरा चली आ रही थी। ऋषभदेव इस परंपरा के पहले तीर्थंकर माने जाते हैं। वर्धमान या महावीर इसके अंतिम तीर्थंकर थे। उनका जन्म ईसा से पूर्व छठी शताब्दी वर्ष में हुआ था।

जैन ईश्वर को नहीं मानते। जैन मत के प्रवर्तकों की उपासना करते हैं। तीर्थंकर मुक्त होते हैं। किंतु मोक्ष पाने के पूर्व में भी बंधन में थे लेकिन साधना के द्वारा ये मुक्त, सिद्ध, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और आनंदमय हो गए।

कालांतर में जैनों के दो संप्रदाय हो गए, श्वेतांबर और दिगंबर। श्वेतांबर और दिगंबर संप्रदायों में मूल सिद्धांतों का भेद नहीं बल्कि आचार विचार संबंधी कुछ और बातों को लेकर भेद किए गये हैं। यह दोनों ही महावीर के संदेशों को मानते हैं लेकिन नियम पालन की कठोरता श्वेतांबर की अपेक्षा दिगंबर में अधिक पाई जाती है। यहां तक कि वे वस्त्रों का व्यवहार भी नहीं करते हैं। श्वेतांबर सन्यासी वस्त्रों का व्यवहार करते हैं।

दिगंबरों के अनुसार पूर्ण ज्ञानी महात्माओं को भोजन की भी आवश्यकता नहीं होती है। वे यह भी कहते हैं कि स्त्रियाँ जब तक पुरुष रूप में जन्म ग्रहण न कर ले तब तक वे मुक्तिप्राप्त नहीं कर सकती किंतु श्वेतांबर इन विचारों को नहीं मानते हैं।

### 3.3.2 जैन दर्शन का साहित्य

जैन दर्शन का साहित्य बहुत समृद्ध है और अधिकांशतः प्राकृत भाषा में है। जैनमत के मौलिक सिद्धांतों को सभी संप्रदायों के लोग मानते हैं। कहा जाता है कि इन सिद्धांतों के उपदेशक 24वें तीर्थंकर महावीर हैं। आगे चलकर जैन दर्शन ने संस्कृत भाषा को अपनाया और फिर संस्कृत में भी जैन साहित्य का विकास हुआ। संस्कृत में उमा स्वाति का तत्त्वार्थाधिगम सूत्र, सिद्धसिंह दिवाकर का न्यायावतार, नेमिचंद्र का द्रव्यसंग्रह, मल्लिसेन का स्याद्वादमंजरी, प्रभाचंद का प्रमेय-कमलमार्तंड आदि प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रंथ हैं।

### 3.3.3 जैन दर्शन के तत्वों पर विचार

जैन दर्शन तत्त्वमीमांसा वस्तुवादी और सापेक्षतावादी बहुत्ववाद है जिसे अनेकांतवाद कहते हैं। तत्त्व, वस्तु, द्रव्य अनेक हैं और प्रत्येक वस्तु के अनेक धर्म होते हैं, 'अनन्तधर्मात्मकमेव तत्त्वम्'। सत् वस्तु में ध्रौव्य यानी नित्यता तथा उत्पाद और व्यय यानी अनित्यता ये तीनों धर्म होते हैं 'उत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्तम सत्'। द्रव्य वह है जिसके गुण और पर्याय नामक धर्म हों – 'गुणपर्यायवत् द्रव्यम्'।

द्रव्य के सर्वप्रथम दो भेद हैं – अस्तिकाय और अनस्तिकाय। अस्तिकाय का अर्थ है विस्तार युक्त। सत्तायुक्त होने से 'अस्ति' और शरीर के समान विस्तार युक्त होने से 'काय'। अस्तिकाय द्रव्य पांच है – जीव, पुद्गल, आकाश, धर्म और अधर्म। इनमें जीव के अतिरिक्त शेष चार द्रव्य अजीव हैं। काल को एकमात्र अनस्तिकाय तथा एकप्रदेशव्यापी द्रव्य माना गया है।

जीवों के दो भेद हैं – बद्ध और मुक्त। बद्ध के भी दो प्रकार हैं – त्रस या जंगमय और स्थावर। त्रस जीवों के चार प्रकार हैं – पांच इंद्रिय वाले, चार इंद्रिय वाले, तीन इंद्रिय वाले और दो इंद्रिय वाले।

स्थावर जीव एक इंद्रिय वाले हैं। अजीव के चार भेद हैं – पुद्गल, आकाश, धर्म और अधर्म। पुद्गल के दो प्रकार हैं – अणु और संघात, पुद्गल जड़ भौतिक तत्त्व हैं। स्पर्श, रस, गंध, और वर्ण इसके गुण हैं। शब्द मूल गुण नहीं है अपितु उत्पन्न होने वाला परिणाम है। यहां ध्यातव्य है की जैन मत कर्म को भी पौद्गलिक मानता है। पृथ्वी, अग्नि, जल और वायु के समान कर्म भी भौतिक तत्त्व हैं जो जीव के चारों ओर चिपक कर उसे बद्ध बना देता है।

आकाश नित्य और अनंत है। इसके भी दो प्रकार हैं – जिसमें द्रव्यों की स्थिति होती है, वह लोकाकाश है तथा इसके ऊपर अलोकाकाश है, जहाँ द्रव्य नहीं है। आकाश का प्रत्यक्ष नहीं होता। द्रव्यों के विस्तार की सिद्धि के लिए आकाश का अनुमान किया जाता है।

जैन दर्शन में धर्म और अधर्म की कल्पना जीव तथा पुद्गल द्रव्यों की क्रमशः गति और स्थिति में सहायक द्रव्यों के रूप में की गई है। धर्म स्वयं गति नहीं है और न वह जीवादि द्रव्यों को गति प्रदान करता है वह केवल गति में सहायक होता है। जैसे जल मछली की गति में सहायक है। इसी प्रकार अधर्म स्वयं स्थिति नहीं है और न वह जीवादि द्रव्यों को स्थिति प्रदान करता है। वह केवल स्थिति में सहायक होता है।

काल को एक मात्र अनस्तिकाय द्रव्य माना जाता है। काल की सत्ता अनुमान के आधार पर स्वीकार की जाती है।

वर्तना (स्थिति की निरंतरता) परिणाम (परिवर्तन), क्रिया तथा परत्व व अपरत्व का कारण है अर्थात् पूर्व और अपर, तब और अब, प्राचीन और नवीन, ज्येष्ठ और कनिष्ठ आदि व्यवहार काल की सत्ता के कारण संभव हैं।

काल के दो भेद माने गए हैं – व्यावहारिक काल जो पल, दिन, मास, वर्ष आदि अवयवों की कल्पना से युक्त है और द्रव्यों के परिणाम क्रिया पर त्वरित प्रभाव का कारण है। परमार्थिक काल जो नित्य, निरयव और अखंड है तथा जो वर्तमान स्थिति की निरंतरता का कारण है।

### 3.3.4 जैन दर्शन का प्रमाण विचार

जैन दर्शन ज्ञान के दो भेद मानते हैं परोक्ष ज्ञान तथा अपरोक्ष ज्ञान।

इंद्रियों को मन के द्वारा जो बाह्य एवं अभ्यंतर विषयों का ज्ञान होता है वह अनुमान की अपेक्षा अवश्य अपरोक्ष होता है। किंतु ऐसे ज्ञान को पूर्णतया अपरोक्ष नहीं माना जा सकता है क्योंकि यह भी इंद्रिय या मन के द्वारा होता है। इस व्यवहारिक अपरोक्ष ज्ञान के अतिरिक्त पारमार्थिक अपरोक्ष ज्ञान भी हो सकता है जिसकी प्राप्ति कर्म बंधन के नष्ट होने पर ही होती है। परमार्थिक अपरोक्ष ज्ञान के तीन भेद हैं – अवधि, मनः पर्याय तथा केवल।

- 1) **अवधि ज्ञान** : इंद्रिय द्वारा अदृष्ट दूर स्थित पदार्थों का ज्ञान अवधि ज्ञान कहलाता है। यह अतींद्रिय है। काल से सीमित होने के कारण ही यह अवधि कहलाता है।
- 2) **मनः पर्याय** : जब मनुष्य राग, द्वेष आदि मानसिक बाधाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है तब अन्य व्यक्तियों के वर्तमान तथा भूत विचारों को जान सकता है। ऐसे ज्ञान को मनःपर्याय ज्ञान कहते हैं। अवधि और मनःपर्याय दोनों ज्ञान सीमित हैं।
- 3) **केवल ज्ञान** : केवल ज्ञान का अर्थ है शुद्ध सर्वज्ञ ज्ञान। जब आत्मा के समस्त आवरणीय कर्मों का आत्यंतिक नाश हो जाता है तब आत्मा अपने शुद्ध सर्वज्ञ रूप में प्रकाशित होता है इसे 'केवल ज्ञान' कहते हैं। यही शुद्ध अपरोक्ष ज्ञान है जिसे हेमचंद्राचार्य ने आत्मा के 'स्वरूप आविर्भाव' की संज्ञा दी है और जिसे आचार्य गुणरत्न ने पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहा है। यह मुक्त जीवों को ही प्राप्त होता है।

**लौकिक ज्ञान** : मति और श्रुत। साधारणतः मतिज्ञान उसे कहते हैं जो इंद्रिय तथा मन के द्वारा प्राप्त होता है। इस प्रकार मति के अंतर्गत व्यवहारिक अपरोक्ष ज्ञान (बाह्य) तथा आंतर (प्रत्यक्ष, स्मृति), प्रत्यभिज्ञा, अनुमान सभी आ जाते हैं।

श्रुत 'शब्द ज्ञान' को कहते हैं। जैन तीर्थंकरों के उद्देश्यों एवं जैन आगमों से प्राप्त ज्ञान श्रुत ज्ञान है। यह शास्त्रनिबद्ध ज्ञान है अर्थात् आप्त पुरुषों द्वारा रचित शास्त्रों से जो मतिपूर्वक ज्ञान प्राप्त होता है वह श्रुत ज्ञान है। इसमें मति कारण रूप में होता है और शुद्ध ज्ञान कार्य रूप में क्योंकि शब्द श्रवण रूप व्यापार मति ज्ञान है और तदनंतर उत्पन्न होने वाला ज्ञान और श्रुत ज्ञान है।

1) **प्रत्यक्ष प्रमाण** : उल्लेखनीय है कि जैन दर्शन में वास्तविक प्रत्यक्ष परमार्थिक प्रत्यक्ष है जिसकी प्राप्ति हेतु किसी साधन की आवश्यकता नहीं होती। इसमें विषय का सीधा प्रत्यक्ष होता है। यह कर्म जन्य बाधाओं के दूर होने पर संभव होता है। हेतु एक व्यापक साधना पद्धति विकसित की गई है। जैन दर्शन में एक अन्य प्रत्यक्ष की भी चर्चा की गई है। वह व्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान है एवं अन्य विषय के साथ होने पर प्राप्त होता है। उसमें से साधक को गुजरना पड़ता है जो इस प्रकार हैं –

क) **अवग्रह** : इंद्रिय और विषय का संघर्ष होने पर नाम आदि की विशेष कल्पना से रहित सामान्य मात्रा का ज्ञान व ग्रह है जैसे नेत्र का पुष्प से संघर्ष होने पर प्रतीत होना कि कोई वस्तु है, किंतु यह ज्ञात ना हो ना कि वह क्या है; अवग्रह है। अवग्रह के भी भेद होते हैं – व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह।

व्यंजनावग्रह अर्थ और इंद्रियों के संयोग के पूर्व का अव्यक्त ज्ञान है। इसमें चेतनावर्धक विषय का प्रभाव इंद्रियों की परिधिस्थ उपान्तों पर पड़ता है जिससे विषयी विषय के संपर्क में आता है। अर्थावग्रह में चेतना को उत्तेजना मिलती है और एक संवेदना का अनुभव होता है। इससे व्यक्ति को विषय का ज्ञान मात्र होता है।

ख) **ईहा** : अवगृहीतार्थ को विशेष रूप से जानने की इच्छा 'ईहा' है। इसमें मन प्रमेय विषय का विवरण जानने की इच्छा करता है। वह अन्य विषयों के साथ उसका सादृश्य एवं विभेद जानना चाहता है; जैसे मन में पुष्प के गुणों को जानने की इच्छा होना 'ईहा' है।

ग) **अवाय** : ईहितार्थ का विशेष निर्णय 'अवाय' है। इस अवस्था में दृश्य विषय के गुणों का निश्चायक एवं निर्णायक ज्ञान प्राप्त होता है। जैसे – यह रक्त कमल है, दृश्य विषय का यह निश्चायक अज्ञान 'आवाय' है।

घ) **धारणा** : इस अवस्था में दृश्य विषय का पूर्ण ज्ञान हो जाता है और इसका संस्कार जीव के अंतःकरण में अंकित हो जाता है। कालांतर में इसी से स्मृति उत्पन्न होती है। अतः जैन दार्शनिक स्मृति के हेतु के रूप में धारणा की व्याख्या करते हैं।

उपर्युक्त चारों अवस्थाओं से संक्रमित होने के उपरान्त प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है।

2) **अनुमान प्रमाण** : जैन दार्शनिक अनुमान को भी यथार्थ ज्ञान का प्रमाण मानते हैं। वे सर्वप्रथम चार्वाक दार्शनिकों की अनुमान प्रमाण खण्डन वृत्ति की आलोचना करते हैं और यथार्थ ज्ञान के प्रमाण के रूप में अनुमान के प्रमाणत्व को स्थापित करते हैं। जैन दार्शनिकों ने दिखाया कि चार्वाक विचारक व्याप्ति का निराकरण कर के अनुमान का खंडन करना चाहते हैं। किंतु 'प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है' 'अनुमान प्रमाण नहीं है' उनके ये कथन उनकी इस आस्था की ओर संकेत करते हैं कि कतिपय दृष्टान्तों में व्याप्ति संभव है। इस प्रकार चार्वाकों द्वारा व्याप्ति का निराकरण तथा उसके आधार पर अनुमान के प्रमाण पत्र का निषेध अनुचित है।

अनुमान एक परोक्ष ज्ञान है जिसमें हेतु के आधार पर साध्य का ज्ञान प्राप्त होता है। जैसे – पर्वत पर धुएं को देखकर वहाँ का ज्ञान प्राप्त करना अनुमान से ही संभव है। जैन दार्शनिक भी अनुमान के दो भेद स्वीकार करते हैं। स्वार्थ और परार्थ। अपने संशय को दूर करने के लिए किया गया अनुमान स्वार्थ अनुमान और दूसरों की संशय निवृत्ति के लिए व्यवस्थित तरीके से व्यक्त किया गया अनुमान परार्थानुमान है। जहाँ जैन तर्कशास्त्री सिद्धसेन दिवाकर न्याय दार्शनिकों के समान ही अनुमान में 5 अवयव स्वीकार करते हैं – प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टांत, उपनय और निगमन। भद्रबाहु अनुमान में दशावयव मानते हैं – प्रतिज्ञा, प्रतिज्ञा विभक्ति, हेतु, हेतु विभक्ति, विपक्ष, विपक्ष प्रतिषेध, दृष्टांत, आशंका, आशंका प्रतिषेध और निगमन।

- 3) **शब्द प्रमाण :** शब्द प्रमाण भी जैन दर्शन में एक परोक्ष प्रमाण है। ज्ञान शब्द प्रमाण से ही प्राप्त होता है जो ज्ञान शब्द के द्वारा प्राप्त हो किंतु प्रत्यक्ष के विरुद्ध हो वह शब्द प्रमाण है। जैन दर्शन में शब्द प्रमाण के दो भेद किए जाते हैं – लौकिक और शास्त्र तथा विश्वसनीय व्यक्तियों के शब्दों एवं वचनों से प्राप्त ज्ञान और शास्त्रों के अध्ययन से प्राप्त ज्ञान शास्त्रज्ञ ज्ञान है।

### 3.3.5 जैन दर्शन में आत्मा विचार

जीव चेतन द्रव्य है। जैन दर्शन का जीव ही वस्तुतः आत्मा है। चैतन्य जीव का लक्षण स्वरूप है। 'चैतन्य लक्षणो जीवः'। प्रत्येक जीव स्वरूप से अनंत चतुष्टय संपन्न है अर्थात् उसे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य से संपन्न माना गया है। कर्ममल से संपृक्त होने के कारण बस जीवों पर कर्ममल का आवरण पड़ जाता है जिससे उनमें उपर्युक्त स्वरूप धर्मों का प्रकाशन नहीं हो पाता। इन गुणों के तारतम्य के कारण जीवों के अनंत भेद हो जाते हैं।

जैन दर्शन जीवों में गुणात्मक भेद नहीं मानता, केवल मात्रात्मक भेद मानता है। सबसे निम्न जीव एकेंद्रिय हैं जो भौतिक जड़ तत्व में रहते हैं। निष्प्राण प्रतीत होते हैं किंतु इनमें भी प्राण तथा चैतन्य सुप्तावस्था में विद्यमान है। वनस्पति जगत् के जीवों में चैतन्य तन्द्रिल अवस्था में है। मर्त्यलोक के क्षुद्र कीटों, चींटियों, मक्खियों, मधुमक्खियों, पक्षियों, पशुओं और मानवों में जीवों के चैतन्य का उत्तरोत्तर उत्कर्ष प्रतीत होता है।

जैन दर्शन जीव को ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता मानता है। ज्ञान जीव का स्वरूप गुण है। अतः वह स्वाभाविक रूप से ज्ञाता है। जीव कर्मों का वास्तविक कर्ता है और इसलिए कर्म फलों का वास्तविक भोक्ता भी है। यह अस्तिकाय द्रव्य है, किंतु उसका आकाश में पुद्गल के समान विस्तार नहीं होता। जीव भौतिक शरीर, इंद्रिय, मन आदि से भिन्न है। आकाश में जीव का विस्तार दीपक के प्रकाश के समान है। जिस प्रकार कई दीपों का प्रकाश एक साथ रहता है उसी प्रकार कई जीव बिना टकराये आकाश में स्थित रहते हैं। स्वयं अरूपी होते हुए भी जीव अपने शरीर के रूप में परिमाण को धारण कर लेता है। वह न विभु है, और न ही वह अणु। वह शरीरपरिणामी है। चींटी का जीव चींटी के शरीर के बराबर और हाथी का जीव हाथी के शरीर के बराबर होता है – 'पिपीलिकापुद्गलं प्राप्य पिपीलिका भवति, हस्तिपुद्गलं प्राप्य हस्ती भवति।'।



## 3.4 बौद्ध दर्शन

### 3.4.1 बौद्ध दर्शन का परिचय

बौद्ध धर्म के प्रवर्तक बुद्ध थे जो बचपन में सिद्धार्थ कहलाते थे। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में हिमालय तराई के कपिलवस्तु नामक स्थान में इनका जन्म हुआ था। जन्म-मरण के दृश्यों को देखने से उनके मन में विश्वास पैदा हुआ कि संसार में केवल दुःख ही दुःख है। अतः दुःख से मुक्ति पाने के लिए इन्होंने सन्यास ग्रहण किया। सन्यासी बन कर इन्होंने दुःखों के मूल कारणों को तथा उनसे मुक्त होने के उपायों को जानने का प्रयास किया। बुद्ध का समय ईसा पूर्व छठी शताब्दी कहा जाता है। उनके जन्म का वर्ष बौद्ध परंपरा अनुसार लगभग 624 ईसा पूर्व तथा अन्य विद्वानों के अनुसार 566 ईसा पूर्व के आसपास होना चाहिए। किंतु यह सिद्ध है कि भगवान बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण (गृह त्याग और परिव्राजकत्व) से लेकर महापरिनिर्वाण तक का समय छठी सदी ईसा पूर्व है। संन्यास के बाद 6 वर्षों की कठिन तपस्या और साधना के बाद लगभग 35 वर्ष की आयु में गया के समीप बोधि वृक्ष के नीचे अज्ञान के अंधकार को दूर करने वाले ज्ञानसूर्य का साक्षात्कार कर 'सम्यक् संबुद्ध' बने। फिर वे वाराणसी के पास ऋषिपत्तन में सारनाथ गए और वहाँ पांच भिक्षुओं को उन्होंने अपना शिष्य बना कर अपने साक्षात्कृत सत्य का सर्वप्रथम उपदेश दिया, जिसे धर्मचक्रप्रवर्तन की संज्ञा दी गई है। यहीं से बौद्ध धर्म का प्रारंभ हुआ।

### 3.4.2 बौद्ध दर्शन का साहित्य

बौद्ध दर्शन का साहित्य त्रिपिटकों में संग्रहीत है। त्रिपिटकों के अंतर्गत विनय पिटक, सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक हैं।

विनय पिटक में संघ के नियमों का, सुत्त पिटक में बुद्ध के वार्तालाप और उपदेशों का तथा अभिधम्म पिटक में दार्शनिक विचारों का संग्रह हुआ है। इन पिटकों में केवल प्राचीन बौद्ध धर्म का वर्णन मिलता है। इनकी भाषा पालि है।

### 3.4.3 बौद्ध दर्शन के संप्रदाय

महात्मा बुद्ध के अनुयायियों की संख्या आगे चलकर बहुत बढ़ गई और ये कई संप्रदायों में विभक्त हो गए। धार्मिक मतभेद के कारण बौद्ध धर्म की दो शाखाएं कायम हुईं जो हीनयान तथा महायान के नाम से प्रसिद्ध हैं। हीनयान का प्रचार भारत के दक्षिण में हुआ। इसका अधिक प्रचार श्रीलंका थाईलैंड में है। पालि त्रिपिटक हीनयान के प्रधान ग्रंथ हैं। महायान का प्रचार अधिकतर उत्तर के देशों में हुआ है, इसके अनुयाई तिब्बत, चीन तथा जापान में अधिक पाए जाते हैं। महायान का दार्शनिक विवेचन संस्कृत में हुआ है। अतः इसके ग्रंथों की भाषा संस्कृत है।

बुद्ध निर्वाण के लगभग 100 वर्ष बाद वैशाली में संपन्न द्वितीय बौद्ध संगीति में थेर (स्थविरवादी) भिक्षुओं ने मतभेद रखने वाले भिक्षुओं को पापभिक्षु कह कर संघ से बाहर निकाल दिया था। उन भिक्षुओं ने उसी समय अपना अलग संघ बनाकर स्वयं को महासांघिक और थेरवादियों को हीनसांघिक नाम दिया। जिसने कालांतर में महायान और हीनयान का रूप धारण किया। थेरवाद से महायान संप्रदायों के क्रमशः विकास में कई शताब्दियाँ लगीं। सम्राट अशोक द्वारा लगभग 249 ईसा पूर्व में पाटलिपुत्र में आहूत तृतीय बौद्ध संगीति में पाली त्रिपिटक का संकलन हुआ जिसका प्रचार अशोक के पुत्र महेन्द्र द्वारा श्रीलंका में किया गया जो अभी तक वहाँ प्रचलित हैं।

श्रीलंका में प्रथम शती ई.पू. में पाली तिपिटक को सर्वप्रथम लिपिबद्ध किया गया। यही पालि तिपिटक (त्रिपिटक) अब सर्वाधिक प्राचीन त्रिपिटक के रूप में उपलब्ध हैं। तृतीय संगीति के बाद से ही भारत में थेरवाद धीरे-धीरे लुप्त होता गया और उसका स्थान सर्वास्तिवाद या वैभाषिक समुदाय ने ले लिया, इसका त्रिपिटक और उसकी टीकाएं आदि संस्कृत में थीं जो मूल में नष्ट हो गई थी तथा चीनी अनुवाद में सुरक्षित हैं। अश्वघोष के ग्रंथों में तथा महायानवैपुल्यसूत्रों में क्रमशः विकसित होकर महायान नागार्जुन के माध्यमिक और असंग के योगाचार संप्रदायों के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

हीनयान में बुद्ध के उपदेशों का मर्म ना समझने के कारण क्षणिक धर्मों को ही सत्य मानकर बहुत्ववादी वस्तुवाद का विकास हुआ जिसके अनुसार पुद्गलनैरात्म्य द्वारा क्लेशावरण के क्षय पर बल दिया गया। महायान में, बुद्ध के उपदेशों के तात्त्विक अर्थ के आधार पर, पुद्गल या जीवात्मा के साथ-साथ भौतिक धर्मों की भी प्रातीतिक सत्ता और तात्त्विक असत्ता को स्वीकार करके पुद्गल नैरात्म्य के साथ धर्मनैरात्म्य का भी प्रतिपादन किया गया एवं क्लेशावरण क्षय के साथ साथ ज्ञेयावरण क्षय पर भी बल दिया गया है।

हीनयान के अनुसार बुद्ध एक महापुरुष थे जिन्होंने अपने प्रयत्नों से निर्वाण प्राप्त किया और निर्वाण प्राप्ति के मार्ग का उपदेश दिया। महायान में बुद्ध को लोकोत्तर तथा ईश्वर स्थानापन्न बना दिया गया। बुद्ध के अवतारों की कल्पना की गई। त्रिकाल के सिद्धांत को विकसित किया गया। बुद्ध भक्ति की प्रतिष्ठा हुई। लोक कल्याण की भावना और महाकरुणा का विकास हुआ।

### बौद्ध दर्शन की चार प्रमुख शाखाएं

बौद्ध दर्शन का 4 शाखाओं में जो वर्गीकरण हुआ है इसके पीछे दो प्रश्न विद्यमान हैं, एक अस्तित्व संबंधीय और दूसरा ज्ञान संबंधी। अस्तित्व संबंधित प्रश्न यह है कि, मानसिक या बाह्य कोई वस्तु है या नहीं? इस प्रश्न के तीन उत्तर दिए गए हैं, पहला माध्यमिकों के अनुसार कि मानसिक या बाह्य किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। सभी शून्य है। अतः ये शून्यवादी के नाम से प्रसिद्ध हैं। दूसरा योगाचारों के अनुसार — मानसिक अवस्थाएं या विज्ञान ही एक मात्र सत्य है। बाह्य पदार्थों का कोई अस्तित्व नहीं है अतः योगाचार विज्ञानवादी के नाम से प्रसिद्ध है। तीसरा, कुछ बौद्ध यह मानते हैं कि मानसिक तथा बाह्य सभी वस्तुएं सत्य हैं। अतः यह वस्तुवादी हैं। ये सर्वास्तिवादी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

बाहरी वस्तुओं के ज्ञान के लिए क्या प्रमाण है? सर्वास्तित्ववादी अर्थात् जो वस्तुओं की सत्ता को मानते हैं इस प्रश्न के दो उत्तर देते हैं। कुछ जो सौत्रांतिक के नाम से प्रसिद्ध हैं, यह मानते हैं कि वह वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता है। उनका ज्ञान अनुमान के द्वारा ही होता है। दूसरे जो वैभाषिक नाम से विख्यात हैं वे कहते हैं कि बाह्य वस्तुओं का ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा भी प्राप्त होता है।

### शून्यवाद

शून्यवाद के प्रवर्तक नागार्जुन का जन्म दूसरी शताब्दी में दक्षिण भारत के एक ब्राम्हण परिवार में हुआ था। बुद्धचरित के प्रणेता अश्वघोष भी शून्यवाद के समर्थक थे। नागार्जुन की मूल माध्यमिक कारिका ही इस मत की आधारशिला है। आर्यदेव की चतुःशतिका भी एक और प्रधान ग्रंथ है।

माध्यमिक शून्यवाद को भारतीय दर्शन में कभी-कभी सर्ववैनाशिकवाद भी कहा गया है क्योंकि इसके अनुसार किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। किंतु यदि हम माध्यमिक दर्शन का विचार पूर्वक अध्ययन करें तो हम देख सकते हैं कि माध्यमिक मत वस्तुतः वैनाशिकवाद नहीं है। यह तो केवल इंद्रियों से प्रत्यक्ष जगत् को असत्य मानता है। प्रत्यक्ष जगत् से परमार्थी सत्ता अवश्य है लेकिन वह अवर्णनीय है उसके संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है कि वह मानसिक है या बाह्य। साधारण लौकिक विचारों के द्वारा अवर्णनीय होने के कारण उसे शून्य कहते हैं। इन विचारों से स्पष्ट है कि पारमार्थिक सत्ता या परम तत्त्व बिल्कुल अवर्णनीय है। इस वर्णनातीत तत्त्व को शून्यता कहते हैं।

### योगाचार विज्ञानवाद

योगाचार विज्ञानवाद के अनुसार चित्त ही एकमात्र सत्ता है। विज्ञान के प्रवाह को ही चित्त कहते हैं। हमारे शरीर तथा अन्यान्य पदार्थ जो मन के बहिर्गत मालूम पड़ते हैं वे सभी हमारे मन के अंतर्गत हैं। जिस तरह स्वप्न या मतिभ्रम की अवस्था में हम वस्तुओं को बाह्य समझते हैं यद्यपि वे मन के अंतर्गत ही रहती हैं, उसी तरह साधारण मानसिक अवस्थाओं में भी जो पदार्थ बाह्य प्रतीत होते हैं वे विज्ञान मात्र हैं। किसी वस्तु में तथा तत्संबंधी ज्ञान में कोई भेद सिद्ध नहीं किया जा सका है इसलिए बाह्य वस्तु का अस्तित्व बिल्कुल असिद्ध है।

### सौत्रांतिक

सौत्रांतिक चित्त तथा बाह्य जगत् दोनों को ही मानते हैं। उनका कथन है कि यदि बाह्य वस्तुओं के अस्तित्व को नहीं माना जाए तो वह वस्तु की प्रतीति कैसे होती है – इसका प्रतिपादन हम नहीं कर सकते हैं।

जिसने बाह्य वस्तु को कभी प्रत्यक्ष नहीं देखा है वह यह नहीं कह सकता कि भ्रमवश अपनी मानसिक अवस्था ही बाह्य वस्तु के सदृश प्रतीत होती है इसके लिए बाह्य वस्तु के सदृश यह कहना उसी तरह अर्थहीन है जिस तरह बंध्यापुत्र। विज्ञानवादियों के अनुसार वस्तु की तो कोई सत्ता ही नहीं है। अतः बाह्य वस्तु का न तो कोई ज्ञान हो सकता है न ही उसके साथ किसी की तुलना ही की जा सकती है।

सौत्रांतिक कहते हैं कि यह सही है कि वस्तु के वर्तमान रहने पर ही उसका प्रत्यक्ष होता है किंतु वस्तु और उसका ज्ञान समकालीन है इसलिए अभिन्न है, यह युक्ति ठीक नहीं है। जब हमें घट का प्रत्यक्ष होता है तो घट हमारे बाहर है और ज्ञान अंदर है, इसका स्पष्ट अनुभव होता है।

### वैभाषिक

सौत्रांतिक की तरह ही वैभाषिक भी चित्त तथा बाह्य वस्तु के अस्तित्व को मानते हैं। किंतु आधुनिक नव्य वस्तुवादियों की तरह यह कहते हैं कि वस्तु का ज्ञान प्रत्यक्ष को छोड़कर अन्य किसी उपाय से नहीं हो सकता। यह सही है कि धुआं देखकर हम आग का अनुमान करते हैं कि वस्तुओं का ज्ञान प्रत्यक्ष को छोड़कर अन्य किसी उपाय से नहीं हो सकता। यह सही है कि धुआं देखकर हम आग का अनुमान करते हैं। किंतु यह इसलिए संभव होता है कि अतीत में हमने आग और धुआं एक साथ देखा है। जिसने भी दोनों को एक साथ कभी नहीं देखा वह धुआं देखकर आग का अनुमान नहीं कर सकता। यदि बाह्य वस्तुओं का प्रत्यक्ष कभी नहीं हुआ रहे तो केवल मानसिक

परिरूपों के आधार पर उनका अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सकता है। जिसने कभी कोई वस्तु नहीं देखी है वह यह नहीं समझ सकता कि कोई मानसिक अवस्था किसी वस्तु का प्रतिरूप है। प्रत्युत् वह तो यह समझेगा कि मानसिक अवस्था ही मौलिक और स्वतंत्र सत्ता है, उसका अस्तित्व किसी बाह्य वस्तु पर निर्भर नहीं है। अतः, या तो हमें विज्ञानवाद को स्वीकार करना होगा या मानना होगा कि वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान ही संभव है। अतः वैभाषिक मत को बाह्यप्रत्यक्षवाद कहते हैं। अभिधर्म पर महाविभाषा या विभाषा नाम की प्रकांड टीका इस मत का मूल अवलंबन थी इसलिए इसका नाम वैभाषिक पड़ा।

### 3.4.4 बौद्ध दर्शन में प्रमाण

बौद्ध दो प्रमाण मानते हैं – प्रत्यक्ष और अनुमान।

न्याय वैशेषिक मत इंद्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष मानता है। स्वतंत्रविज्ञानवाद बाह्य पदार्थों को विज्ञान बाह्य नहीं मानता। अतः वह प्रत्यक्ष को सविकल्पक बुद्धि की समस्त कल्पनाओं से रहित, नाम जाति आदि से अस्पृष्ट, अभ्रान्त और अपरोक्ष ज्ञान मानता है। 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढं नामजात्याद्यसंयुतम्। अभ्रान्तमपरोक्षं च प्रत्यक्षणैव सिध्यति।।

वैशेषिक के अनुसार सामान्य विशेष समवाय गुण कर्म पांच पदार्थों से विशिष्ट वस्तु का ज्ञान प्रत्यक्ष में होता है। प्रथम क्षण में आयोजन मात्र होता है। द्वितीय क्षण में विकल्प ज्ञान हो जाता है। नैयायिक इसे निर्विकल्पक और सविकल्पक प्रत्यक्ष कहते हैं। दिङ्नाग इन पदार्थों को बुद्धि रचित संकेत मानते हैं। उनके मत में प्रत्यक्ष का विषय केवल 'स्वलक्षण' है जो समस्त कल्पनाओं से रहित है।

अनुमान दो प्रकार का है – स्वार्थ और परार्थ। स्वार्थानुमान त्रिरूपात्मक लिंग द्वारा अनुमेयार्थ दर्शन को कहते हैं। लिंग के त्रिरूप ये हैं – पक्षधर्मता, सपक्षसत्त्व और विपक्षासत्त्व। इसी को व्यक्ति का अविनाभाव नियम कहते हैं और यही अनुमान का प्राण है। परार्थानुमान को न्याय पंचावयव वाक्य मानता है। जिन्हें प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन कहा जाता है। दिङ्नाग इसे केवल दो अवयवों का वाक्य मानते हैं एक तो सोदाहरण व्याप्ति और दूसरा प्रतिज्ञा, हेतु, उपनय, निगमन समन्वय। उनका परार्थानुमान इस प्रकार है – जहाँ धूम है वहाँ वह्नि अवश्य है, जैसे रसोई घर में, पर्वत धूमवान होने के कारण वह्निमान है।

स्वतंत्र विज्ञानवाद के अनुसार अनुमान की गति सामान्य लक्षण तक ही सीमित है। अनुमान सविकल्प बुद्धि का क्षेत्र है और बुद्धि की पहुंच स्वलक्षण रूपी तत्त्व तक नहीं है। अतः अनुमान की सत्ता व्यवहारिक है परमार्थिक नहीं।

बौद्ध मानते हैं कि प्रत्यक्ष और अनुमान के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण नहीं है। शब्द प्रमाण अनुमानांतर्गत है। उपमान प्रत्यक्ष और स्मृति का समन्वय है। अर्थापत्ति का अंतर्भाव भी अनुमान में हो जाता है। अभाव या तो असत् है या फिर प्रत्यक्ष के अंतर्गत आ जाता है।

### 3.4.5 बौद्ध दर्शन में आत्मा विचार

संसार परिवर्तनशील है। मनुष्येतर जीव या अन्य कोई भी वस्तु परिवर्तन से रहित नहीं है। बुद्ध आत्मा को अहंकार, ममकार का केंद्र मानकर उसे समस्त क्लेशों और अनर्थों का स्रोत बताते रहे क्योंकि यह रागादि दोषों को जन्म देता है; विवेक और वैराग्य को

नहीं। यह भोगों की तृष्णा और आसक्ति का स्रोत है। आत्म दृष्टि, आत्म ज्ञान, आत्म मोह और आत्म स्नेह चारों क्लेश हैं। बुद्ध ने बहुत्ववादी वस्तुवाद के उस 'जीवात्मा' का भी खंडन किया है जिसे वह नित्य चेतन द्रव्य मानता है। यदि आत्मा द्रव्य है तो चेतन और जड़ में ज्ञाता और ज्ञेय में विषयी और विषय में क्या अंतर रहेगा? आत्मा को 'द्रव्य' मानना उसे जड़, ज्ञेय और विषय के स्तर पर उतार देना है और उसके आत्मत्व का निषेध करना है। फिर जीवात्माओं को वस्तुतः अनेक मानना भी असंगत है। बौद्ध दर्शन में जीव के लिए पुद्गल और सत्काय शब्दों का प्रयोग किया गया है। पुद्गल का अर्थ है जो जन्म, जीर्णता और नाश से युक्त हो तथा सत्काय का अर्थ है इस जीवित काया को ही आत्मा मानना। दोनों शब्दों से यही ध्वनि निकलती है कि लौकिक अनुभव में नित्य आत्मा नहीं आता, यहां तो परिवर्तनशील शरीर संघात और विज्ञान प्रवाह का ही अनुभव होता है जिनमें से कोई भी आत्मा नहीं है। यदि लोक व्यवहार, साधना के लिए आत्मा की कल्पना की भी नहीं जाए तो भी आपत्ति नहीं है क्योंकि व्यवहारिक सत्ता ही है तात्त्विक नहीं।

बुद्ध ने कहा है कि पांचों स्कंधों का संघात ही वस्तुतः आत्मा है। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान का स्कंध ही मिलकर इसका स्वरूप बनाते हैं।

बुद्ध की मान्यता यही है कि असली आत्मा बुद्धि के विकल्पों द्वारा गम्य नहीं है। समस्त पदार्थ संस्कृत हैं अर्थात् कर्म संस्कारों से उत्पन्न हैं। जो संस्कृत है वह अनित्य है, दुःखरूप है, अनात्म है, मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा आत्मा नहीं है। फिर आत्मा का अस्तित्व अस्वीकार करते हुए भी बुद्ध यह स्वीकार करते थे कि जीवन विभिन्न क्रमबद्ध और और व्यवस्थित अवस्थाओं का प्रवाह या संतान है। विभिन्न अवस्थाओं की संतति को ही जीवन कहते हैं। इस संतति के अंदर किसी अवस्था की उत्पत्ति उसकी पूर्ववर्ती अवस्था से होती है। इसी तरह वर्तमान अवस्था आगामी अवस्था को उत्पन्न करती है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में पूर्वापर कारण कार्य संबंध रहता है। इसलिए संपूर्ण जीवन एकमय मालूम पड़ता है। जीवन को रात भर जलते दीपक के द्वारा समझा जा सकता है। प्रत्येक क्षण की ज्योति दीपक की तत्कालीन अवस्थाओं पर निर्भर होती है। क्षण क्षण में दीपक व्यवस्था बदलती रहती हैं। अतः प्रत्येक क्षण ज्योति भी भिन्न-भिन्न होती है लेकिन ज्योति भिन्न होने पर भी बिल्कुल मालूम पड़ती हैं। कठिनाई को दूर करने के लिए हम दीपक को सामने रख सकते हैं एक ज्योति से ज्योति को प्रकाशित किया जा सकता है। किंतु दोनों ज्योतियाँ एक ही नहीं समझी जा सकतीं। दोनों का अस्तित्व एक दूसरे से पृथक हैं। उनमें कारण कार्य का संबंध है। जीवन की अंतिम अवस्था से भविष्य की उत्पत्ति हो सकती है।

### 3.5 सारांश

हम देखते हैं कि नास्तिक और आस्तिक दर्शनों के विभेदीकरण का मुख्य आधार वेदों के अस्तित्व की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति है। साथ ही साथ ईश्वर के अस्तित्व को भी इस आधार को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण माना गया है। चार्वाक दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार किया गया है। इसमें प्रत्यक्षीकरण को ज्ञान का एकमात्र साधन माना गया है। प्रत्यक्षीकरण के द्वारा ईश्वर का ज्ञान नहीं होता। अतः चार्वाक अनीश्वरवाद पर बल देता है।

बौद्ध दर्शन ने भी वेदों और ईश्वर के अस्तित्व को नहीं माना है। संसार प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम से संचालित होता है। प्रतीत्यसमुत्पाद बौद्ध दर्शन की

कारणता का सिद्धांत है। विज्ञानवाद, शून्यवाद, सौत्रांतिक और वैभाषिक इसके चार अलग-अलग संप्रदाय हैं। बौद्ध दर्शन की तरह ही जैन दर्शन में भी अनीश्वरवाद पर बल दिया गया है। जैन दर्शन के अनुसार ईश्वर को विश्व का स्रष्टा मानना भ्रांतिमूलक है। जैन दर्शन ईश्वर के अस्तित्व को अप्रमाणित मानता है। ईश्वर को सृष्टिकर्ता मान लेने से सृष्टि के प्रयोजन की व्याख्या नहीं होती। चेतन प्राणी जो कुछ करता है अपनी स्वार्थ भावना से प्रेरित होकर ही करता है किंतु ईश्वर स्वार्थ से प्रेरित होकर संसार की सृष्टि नहीं करता है; क्योंकि वह पूर्ण है। ईश्वर को विश्व निर्माता नहीं माना गया है। बौद्ध दर्शन के महायान धर्म में महात्मा बुद्ध को मृत्यु के पश्चात ईश्वर माना गया। लेकिन हीनयान धर्म अनीश्वरवादी धर्म है।

### 3.6 शब्दावली

1. आस्तिक – वेदों को माननीय वाले
2. नास्तिक – वेदों को ना मानने वाले
3. प्रत्यक्ष – सामने (अक्ष के सम्मुख)
4. पंचभूत – पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल, आकाश नामक महाभूत
5. चौतन्य – चेतना से संपन्न
6. तीर्थंकर – धर्म प्रचारक जैन सिद्ध
7. प्रमाता – जानने वाला
8. भोक्ता – भोगने वाला
9. कर्ता – करने वाला

### 3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- हरिभद्रसूरि, षड्दर्शन समुच्चय, चौखंबा संस्कृत सीरीज, चौक, वाराणसी।
- वात्सायन, कामसूत्रयथाध्याय 1-2।
- राधा कृष्णन्, Indian philosophy खंड-1।
- उमा स्वामी, तत्त्वार्थाधिगम सूत्र (जे.एल. जैनीकृत अंग्रेजी अनुवाद के सहित), द सेंट्रल पब्लिशिंग हाउस आगरा, इंडिया।
- मल्लिसेन, स्यादवाद मंजरी, हेमचंद्र की टीका सहित, चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
- Rhys Davids & Buddhism (Home University, Library).
- B.M. Barua : A history of Pre & Buddhistic Indian philosophy (Calcutta University).
- D.T. Suzuki' Outlines of Mahayana Buddhism (Luzac and Co.)
- H.C. Warren & Buddhism in Translations (Harvard University Press)

### 3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. चार्वाक दर्शन की तत्त्व मीमांसा की समीक्षात्मक व्याख्या करें।
2. चार्वाक दर्शन के भौतिकवाद की समीक्षात्मक व्याख्या करें।
3. चार्वाक दर्शन का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
4. जैन दर्शन के द्रव्य सिद्धांत का विवेचन करें।
5. जैन दर्शन के अनुसार जीव के स्वरूप का वर्णन करें। यह जीव के अस्तित्व को कैसे सिद्ध करता है?
6. जैन दर्शन के अनुसार पुद्गल पर एक टिप्पणी लिखिए।
7. बौद्ध दर्शन की चार शाखाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
8. महायान और हीनयान संप्रदायों के बीच मूल भेदों की व्याख्या करें।
9. बौद्ध दर्शन के योगाचार विज्ञानवाद संप्रदाय का आलोचनात्मक विवरण दीजिए।
10. माध्यमिक दर्शन में शून्यता का क्या अर्थ है ? माध्यमिक दर्शन की अद्वैत दर्शन के ब्रह्म से तुलना कीजिए।



ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY

